श्रीः

महाकवि रइधूकृत

भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त-कथानक एवं राजा कल्कि-वर्णन

[अद्यावधि अज्ञात एवं अप्रकाशित हस्त प्रति का सर्वप्रथम सम्पादन-अनुवाद एवं समीक्षात्मक अध्ययन तथा आवश्यक टिप्पणियों, परिशिष्टों, आवश्यक सन्दर्भों एवं शब्दकोष सहित]

सम्पादन एवं अनुवाद

डॉ. राजाराम जैन एम.ए., पी-एच.डी. शास्त्राचार्य

[वी.नि.भा पुरस्कार एवं स्वर्णपदक प्राप्त]

रीडर एवं अध्यक्ष-संस्कृत-प्राकृत विभाग

ह दा जैन कालेज, आरा

सम्मान्य निदेशक

डी.के.जैन ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीटयूट

आरा [बिहार]

प्रकाशक

दिगम्बर जैन युवक संघ

द्वितीय संस्करण 1992 मूल्य 25/-

सादर-समर्पित

श्रद्धेय पूज्य पिता स्वर्गीय गुलजारीलाल जी जैन

की पुण्य स्मृति में, जिन्होंने बचपन में ही मुझे आचार्य भद्रबाहु,

चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त की कथाएँ सुना-सुनाकर

भाव-विभोर किया था।

तथा

तीर्थस्वरूपा माता स्वर्गीया प्यारी देवी जैन

की पुण्य स्मृति में, जो प्रतिदिन हस्तलिखित ग्रन्थ के

स्वाध्याय के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थीं।

श्रद्धाभिभूत

राजाराम जैन

♣

आद्य मिताक्षर

क्रान्तद्रष्टा जैन कवियो की दृष्टि सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय रही है। अतएव वे जनकल्याण की सर्वतोमुखी उदात्त भावना से सर्वभाषामयी जिनवाणी का हर भाषा के साहित्य में सर्वजन सुलभ प्रचार और प्रसार मे सदा अग्रसर रहे। उसी श्रृंखला में महाकवि रइधू ने प्राकृत-गर्भज अपभ्रंश के माध्यम से भद्रबाहु, चाणक्य और चन्द्रगुप्त का, जिनका अंतिम सम्बन्ध कटवप्र -- श्रवण बेलगोला से है, वर्णन किया है। वह ग्रन्थ डॉ. राजाराम जैन, अध्यक्ष, संस्कृत प्राकृत विभाग ह० दा० जैन कालेज आरा [बिहार] के कुशल सम्पादन और भाषान्तरण से सर्वजन सुलभ प्रस्तुत हुआ देखकर सन्तोष हो रहा है। प्राकृत और अपभ्रंश भाषान्तर्गत जैन साहित्य का खोजपूर्ण प्रस्तुतीकरण डॉ. ए.एन उपाध्ये और डॉ. हीरालाल के बाद इस कृति मे उपलब्ध होता है। भद्रबाहु, चाणक्य और चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध श्रवणबेलगोल के कटवप्र-गिरि से ई. पू. ३६५ से रहा है। कालान्तर में कटवप्र का ही नाम चन्द्रगिरि से अभिहित होने लगा, जो वर्तमान में भी प्रचलित है।

डॉ राजाराम जैन अन्वेषण और सशोधन के माध्यम से जिनवाणी एव समाज की सेवा करते आ रहे है। भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर भी इनका अच्छा सहयोग रहा। श्रवणबेलगोल में होनेवाले सहस्राब्दी-प्रतिष्ठापना महोत्सव एव महामस्तकाभिषेक के सुसन्दर्भ मे अद्यावधि अज्ञात, अप्रकाशित, अपभ्रंश - भाषात्मक हस्तप्रति का सर्वप्रथम सम्पादन और प्रकाशन मे इनका बहुत ही महत्त्वपूर्ण सहयोग है।

हमारी भावना है कि भगवान् बाहुबली गोमटेश्वर की आत्मनिष्ठा और [illegible] अज्ञात एव अप्रकाशित अन्य कृतियो की खोज एव सम्पादन में इनका [illegible]शास्रोत बने।

आशीर्वाद

एलाचार्य विद्यानन्द

♣

प्रकाशकीय

श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला के २९ वें पुष्प के रूप में "आचार्य भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त-कथानक एवं कल्किवर्णन" नामक लघु ग्रन्थ को श्री गणेश प्रसाद वर्णी दि० जैन संस्थान की ओर से प्रकाशित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। भारतीय - इतिहास के निर्माण में आचार्य भद्रबाहु, महामति-चाणक्य एवं मौर्य - वंशी प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त का योगदान अविस्मरणीय है। प्राच्य एवं पाश्चात्य इतिहासकारों ने तद्विषयक उपलब्ध विविध सन्दर्भ-सामग्रियों पर ऊहापोह कर कुछ प्रकाश डाला है और यह हर्ष का विषय है कि उनके अधिकांश निष्कर्षों से जैन तथ्यों का प्रायः समर्थन होता है।

नन्द एवं मौर्यवंश तथा आचार्य चाणक्य के विषय में जैन-साहित्य में प्रभूत सामग्री लिखी गयी किन्तु उसमें से अभी कुछ ही सामग्री प्रकाशित हो सकी है, फिर भी सहज-सुलभ न होने से वह विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन का विषय नही बन सकी है। भविष्य में वह ऐतिहासिक सामग्री सहज सुलभ हो सके, इसके लिए संस्थान प्रयत्नशील रहेगा।

हम डॉ० राजाराम जैन के आभारी है, जिन्होंने अपभ्रंश के महाकवि रइधू कृत इस लघु ऐतिहासिक कृति का सम्पादन एवं अनुवाद कर उसमें अपनी प्रस्तावना के माध्यम से उक्त विषयक तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, इसके अतिरिक्त आवश्यक टिप्पणियों एवं परिशिष्टो आदि से भी इसे शोधार्थियों के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है यह कृति सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

श्रुतपचमी
२७-५-८२

- उदयचन्द्र जैन

♣

FOREWORD

While literary (mainly Sanskrit and Pali) and archaeological sources have been fully exploited in re-constructing the history of ancient India by historians, the latter have been indifferent towards the Jaina sources which constitute a veritable mine of informations and offer a vast field of research into the various facets of our early history and culture In fact, a comprehensive and authentic history of early India can be possible only when a scientific and analytical study of these sources is objectively attempted For long such a study remained neglected, but of late scholars have taken up this challenge which is now gradually yielding fascinating results enriching various branches of Indological studies Dr Raja Ram Jain is one of the few such scholars who have done commendable work in exploring this otherwise virgin field for the benefit of researchers enganged in revealing India's past

Poet Raidhu occupies a unique position in Apabhramsa literature and has illumined its various branches by the sparks of his genius Dr Jain has made a comprehensive study of his poetic compositions in his recent publication, entitled *"Raidhu Sahitya Ka Alochanaatmaka Parisilana"* which gives a fairly good account of the life-story and literary contributions of the poet which no one else had done before Raidhu has presented a scintillating account of contemporary traditions, history, culture and artisitic activities through prasastis or eulogies which in fact is the speciality of his poetic creations The present work-*The Story of Bhadrabahu, Chanakya,Chandragupta and the Description of the Kalki raja* is one such work of this poet which has been discovered and edited by Dr. Jain for the first time It contains many interesting references about the age and activities of great men like Acarya Gobaradhana, Bhadrabahu, Chanakya (Kautilya), Chandragupta (Maurya,I) and Āchārya Visakha It is true, Raidhu has based most of his narratives on such classical texts as *Brhatkathakos's Punyas'ravakathakos'a* and Bhadrabahu cairta, but the way he has presented those themes in his work distinguishes him from other writers of his age Another quality of this work is the description of the administrative system of

the Kalki Kings which is not to be found in any Chanakya-Chandragupta story and Bhadrabahu - legends Yet, another interesting aspect of this work is there Kunala, the son of Asoka, is referred to as Nakula whereas in other historical writings we have mention of Kunala and Suyasa in place of Nakula. Raidhu has mentioned Pataliputra as "Patalipura" which is historically significant The description of sixteen dreams of Chandragupta Maurya is another attraction of this work which is not found even in Harisena's Kathakosa A detailed description of these dreams is found in the Punyasravakathakos'a of Ramachandra - Mumuksu which has been largely imitated by the poet in the present work Besides these, he has also thrown light on certain historical episodes which it is extremely difficult to corroborate or Supplement from other sources

All told, the fact remains that present work dealing with the life-stories and achievements of Bhadrabahu, Chanakya and Chandragupta Maurya is the first of its kind in Apabhramsa language which was neither published nor edited by any other scholar so far Dr Jain has done a singular service to the cause of Indology by publishing this work which, besides throwing light on some of the doubtful episode of our ancient history, also corrects the errors which have sufferancelly crept up into the writings of earlier writers

As regards the historical personalities and events enumerated in the work, difference of opinion is bound to occur, for, the present work is more a piece of literature than a sober historical account in which legends and traditions have taken the place of scientific and analytical approach which is but natural Nonetheless, one would have to conceds that some of the facts explained in this work had never been revealed before and of which we had no knowledge whatsoever I have no doubt that the present study will serve as guide, and give a new direction, to the researchers in the field which undoubtedly is the greatest merit of this work

(Dr.) Upendra Thakur

Univ Professor & Head of the Dept of
Ancient Indian & Asian Studies,
Magadh University, Bodhgaya.

प्रस्तावना

आचार्य भद्रबाहु

पृष्ठभूमि : श्रमण-संस्कृति की प्राचीनता - अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में भारत के ऐतिहासिक सर्वेक्षण के क्रम में प्राच्य विद्याविदों का ध्यान भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंग -- श्रमण-संस्कृति की ओर गया और यूरोपीय विद्वानों में लिली, विल्सन, कोलब्रुक, थॉमस, हेमिल्टन, डिलामाइन, याकोवी, हाप्किन्स, बुहलर स्मिथ, हार्यर्नले एवं डॉ० वाशम जैसे विद्वानों तथा प० भगवानलाल इन्द्रजी, डॉ० के०पी० जायसवाल, आर०पी०चन्दा, के० बी० पाठक, डॉ०भण्डारकर, डॉ० घोषाल, पं० नाथूराम प्रेमी, मुनि पुण्यविजयजी, कल्याणविजयजी, गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, डॉ० कामताप्रसाद जैन, प्रभृति भारतीय विद्वानों ने उक्त विषय की प्राचीनता के विषय में सर्वांगीण गम्भीर ऊहापोह किया। कुछ समय तक पर्याप्त साधन-सामग्री के अभाव में श्रमणधर्म अर्थात् जैनधर्म को वैदिक अथवा बौद्धधर्म की एक शाखा सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया, किन्तु शनैः-शनैः प्राचीन जैन साहित्य, पुरालेख एवं अन्य पुरातात्त्विक सामग्री की उपलब्धि तथा उनका गहन तुलनात्मक अध्ययन किये जाने के बाद उक्त भ्रम का वातावरण पर्याप्त मात्रा में दूर हो गया। डॉ० हर्मन-याकोवी एवं बुहलर जैसे निष्पक्ष चिन्तकों को धन्यवाद दिया जाना चाहिए, जिन्होंने अपनी गम्भीर खोजो के बाद उसकी प्राचीनता स्वतन्त्र-सत्ता और उसके महत्त्व को सिद्ध करने वाले ठोस सन्दर्भो एव प्रमाणों को प्रस्तुत किया। इस विषय में डॉ० सी० जे० शाह के निम्न विचार पठनीय हैं [१] :--

" Happily there has been a positive change in the out- look towards Jainism and it has been restored to its due place among the religions of the world in view of the glorious part it played in the past and its contribution to the progress of world culture and civilization, which is not inferior to the contribution of any other religion on the globe."

---

१ C J Shah-Jainism in Northern India introduction Page XXI

सुप्रसिद्ध चित्रकला मर्मज्ञ श्री एन०सी० मेहता ने जैन चित्रकला की प्राचीनता एवं उसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है [१] - Jain paintings found a place even on the walls of cave-temples of Chinese Turkistan.

उक्त तथ्यों के आलोक में यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय प्राच्य-विद्या के विषय में जो भी विचार किया जाये, उसमें श्रमण अथवा जैन-विद्या की उपेक्षा नही की जा सकती, क्योंकि उसके निर्माण में उसका भी सदा से सक्रिय योगदान रहा है , प्रो० बार्थ के शब्दों में कह सकते हैं [२]- They (Jainas) have taken a much more active part in the literary and scientific life of India. Astronomy, Grammer and romantic literature owe a great deal to their zeal.

ऋग्वेद का विश्व-साहित्य में अपना स्थान है। उसमें ऋषभदेव की भी चर्चा आयी है। जैन-परम्परा में उन्हें आद्य तीर्थंकर माना गया है तथा उन्हें अयोध्या के राजा के रूप में स्वीकार कर असि, मसि, कृषि, शिल्प, सेवा एवं वाणिज्य रूप छह कलाओं का आविष्कारक या उपदेशक माना गया है [३]। जैन-परम्परा के अनुसार जैनधर्म अनादिकालीन होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से यह मानने में आपत्ति नही होना चाहिए कि ऋग्वेदकाल में, जिसे अधिकांश अन्वेषक विद्वानों ने लगभग पाँच हजार वर्ष प्राचीन माना है, ऋषभदेव की मान्यता एक महापुरुष के रूप में विख्यात हो चुकी थी [४]। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्व के विषय में तो आधुनिक इतिहासकारों में कोई विरोध ही नही है, उनके २५० वर्षों के बाद अर्थात् आज से ई० पू० २५८० में अन्तिम तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ।

---

१. Mehta-studies in Indian Paintings P 2

२. Barth-Religions of India P 144

३. H D Sankalia- "Looking to the hoary past to which Nabhi and Rsabha both belong, according to the Jaina and Brahmanic tradition, it is not impossible that they did indeed live at a time when man was in a barbarious stage, and that he was raised to higher stage of living by Rsabha. He is therefore perhaps rightly hailed as the first Lord and Teacher who bestowed civilization on man " Voice of Ahimsa vol VII No 2-3 P 83

४ दे. ऋग्वेद - १०। १३६।१-३ तथा ४ ।६।८, ५।१।२२, ८।८।२४।

भगवान् महावीर का तीर्थकाल चतुर्थकाल अर्थात् सुखमा - दुखमा का अंतिम चरण माना गया है। जैन परंपरा के अनुसार ई० पू० ५२७ में महावीर - निर्वाण के बाद उक्त काल के केवल ३ वर्ष ८ माह एवं १५ दिन ही शेष बचे थे। यह तो सर्वविदित ही है कि सन्धिकाल प्रायः संघर्षपूर्ण होता है। चतुर्थकाल जहाँ मानव-जीवन के सुखों - दुःखों से मिश्रित काल माना गया है, वहाँ पंचमकाल मानव जीवन में दुःख ही दुःख प्रस्तुत करनेवाला काल माना गया है। ईर्ष्या, कलह, विद्वेष, हिंसा, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, वक्रजड़ता एवं स्मृति-शैथिल्य तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा दुष्काल आदि उसके प्रधान लक्षण हैं। इस काल की समय सीमा २१००० वर्ष प्रमाण मानी गयी है। उसका चित्रण प्राच्य संस्कृत एवं प्राकृत के जैन-साहित्य में विस्तार के साथ उपलब्ध होता है।

संक्षेप में कहा जाय तो कह सकते हैं कि जहाँ भौतिकवादियों ने पंचमकाल को सभ्यता का चरम विकासकाल माना, वहीं अध्यात्मवादियों विशेषतः जैनाचार्यों ने इस युग को मानव-मूल्यों के क्रमिक-ह्रास का युग माना है।

केवलज्ञानियों एवं श्रुतधरों की परम्परा

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण (ई० पू० ५२७) के १६२ वर्षों तक श्रुत परम्परा का क्रम ठीक रहा, किन्तु उसके बाद कालदोष से उसमें ह्रास होने लगा। तिलोयपण्णत्ति के अनुसार जिस दिन भगवान् महावीर का परिनिर्वाण हुआ, उसी दिन उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और उनका निर्वाण हुआ ई० पू० ५१५ में। उनके मुक्त होने पर सुधर्मा स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और उनका निर्वाण हुआ ई०पू० ५०३ में। उनके बाद जम्बू-स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। यही अन्तिम अनुबध्द - केवली थे। उनका निर्वाणकाल ई० पू० ४६५ माना गया है। इनके बाद कोई अनुबद्ध केवली नही हुआ[1]।

तिलोयपण्णत्ति[2] के अनुसार ३ केवलियों के बाद ५ श्रुतकेवली हुए, जिनके नाम एवं इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार[3] के अनुसार उनका कालक्रम निम्न प्रकार है:--

---

१. तिलोयपण्णत्ति १।१४७६-७८

२ तिलोयपण्णत्ति-१।१४८२-८४।

३. दे० जैन साहित्य का इतिहास : पूर्वपीठिका पृ० ३३९ ।

१.	विष्णुनन्दि (या विष्णुकुमार)	- ई० पू० ४६५ से ई० पू० ४५१	(१४ वर्ष)
२.	नन्दिमित्र	- ई० पू० ४५० से ई० पू० ४३४	(१६ वर्ष)
३.	अपराजित	- ई० पू० ४३३ से ई० पू० ४११	(२२ वर्ष)
४.	गोवर्धन	- ई० पू० ४१० से ई० पू० ३९१	(१९ वर्ष)
५.	भद्रबाहु(प्रथम)	- ई० पू० ३९० से ई० पू० ३६१	(२९वर्ष)
			१०० वर्ष

तत्पश्चात् अंग एवं पूर्व-साहित्य के ज्ञानियों की क्रमिक-परम्परा मिलती है, जिनका काल महावीर-निर्वाण के १६२ वर्ष बाद (अर्थात् ई० पू० ३६५) से ईस्वी सन् ००३८ तक माना गया है [१]। अंगधारी अन्तिम आचार्य लोहाचार्य हुए। वस्तुतः यह काल श्रुतज्ञान का ह्रासकाल था, फिर भी उस समय तक उसकी एकदेश परम्परा चलती रही। अंगधरियों की परम्परा के आद्य आचार्य विशाखनन्दी हुए जो ११ प्रकार के अंग-साहित्य एवं १० प्रकार के पूर्व-साहित्य के ज्ञाता थे, जिनका काल ई०पू० ३६५ से ई०पू० ३५५ तक माना गया है।

आचार्य गोवर्धन, भद्रबाहु एवं विशाखाचार्य का जैन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश-साहित्य में पर्याप्त वर्णन किया गया है। आचार्य गोवर्धन के विषय में पूर्वोक्त सन्दर्भों के साथ-साथ यह भी उल्लेख मिलता है कि वे १२००० शिष्यों के साथ आर्यक्षेत्र के कोटिनगर में पधारे थे और अपने निमित्तज्ञान से वहाँ के पुरोहितपुत्र भद्रबाहु को भावी श्रुतकेवली जानकर उन्हें उनके माता-पिता की सहमतिपूर्वक अपने साथ लाकर तथा उन्हें श्रुतांगों का ज्ञान कराकर स्वर्ग सिधारे थे। यही भद्रबाहु आगे चलकर अन्तिम श्रुतकेवली के रूप में प्रसिद्ध हुए।

विविध कवियों की दृष्टि में आचार्य भद्रबाहु

अन्तिम श्रुतकेवली – भद्रबाहु (प्रथम) के विषय में संक्षिप्त एवं विस्तृत अनेक कथाएँ मिलती हैं। श्रमण-संस्कृति के महापुरुष होने के कारण तो उनका महत्त्व है ही, उनका विशेष महत्त्व इसलिए भी है कि मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त (प्रथम) से उनका सीधा सम्बन्ध है तथा इसी माध्यम से भारतीय राजनीति के प्रमुख आचार्य चाणक्य से भी।

---

१ इनका विवरण परिशिष्ट ५ (टिप्पणियों) मे देखिए।

[१-२] यतिवृषभकृत तिलोयपण्णत्ति[1] (चतुर्थ सदी ईस्वी) में उपलब्ध सामान्य सन्दर्भों के बाद आचार्य हरिषेण (सन् ९३१-३२ ईस्वी) प्रथम कवि हैं, जिन्होंने पूर्वागत अनुश्रुतियों एवं संदर्भो के आधार पर भद्रबाहु की जीवन-गाथा सर्वप्रथम अपने बृहत्कथाकोष[2] (दे० कथा सं० १३१) में निबद्ध की। उसके कथानक के अनुसार[3] भद्रबाहु पुण्ड्रवर्धन देश में स्थित देवकोट्ट (जिसका कि पूर्वनाम कोटिपुर था) के निवासी सोमशर्मा द्विज के पुत्र थे। उन्होंने खेल-खेल में १४ गोलियाँ एक के ऊपर एक रखकर दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दिया। गोवर्धनाचार्य ने उन्हें देखकर तथा भावी श्रुतकेवली जानकर उनके पिता से उन्हें मँगनी में माँग लिया तथा ज्ञान-विज्ञान का प्रकाण्ड विद्वान् बनाकर बाद में उन्हें मुनि-दीक्षा दे दी। कठोर तपश्चर्या के बाद वही अन्तिम पाँचवें श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के रूप में विख्यात हुए।

अन्य किसी समय विहार करते - करते आचार्य भद्रबाहु उज्ञयिनी पहुँचे। वहाँ रानी सुप्रभा के साथ राजा चन्द्रगुप्त राज्य करते थे। वे श्रावकों में भी अग्रगण्य माने जाते थे।

एक बार वहाँ आचार्य भद्रबाहु ने भिक्षा के निमित्त किसी गृह में प्रवेश किया। वहाँ चोलिका में लेटे हुए एक शिशु ने भद्रबाहु के देखते ही कहा - "छिप्रं गच्छ त्वं भगवन्नितः अर्थात् हे भगवन्, आप यहाँ से तत्काल चले जायें। "

दिव्य ज्ञानी आचार्य भद्रबाहु ने शिशु के कथन से भविष्य का ज्ञान किया और समझ गये कि अब निकट भविष्य मे यहाँ १२ वर्ष का भयानक दुष्काल पड़नेवाला है। वे उस दिन बिना भिक्षा के ही वापिस लौट आये और अपने साधु संघ को बताया कि - "मेरी आयु अत्यल्प रह गयी है, अतः मै तो अब यहीं पर समाधि लूँगा। किन्तु आप लोग समुद्री किनारे के देशों में चले जायें, क्योंकि यहाँ शीघ्र ही १२ वर्षो का भयानक दुष्काल पड़ेगा तथा चोरों एवं लुटेरों के आतंक के कारण यह देश देखते-देखते शून्य हो जायगा।"

यह सुनकर नरेश्वर चन्द्रगुप्त ने उन्ही आचार्य भद्रबाहु से जैनदीक्षा ले ली। वे दशपूर्वधारी होकर विशाखाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्ही के साथ साधु- समुदाय दक्षिण भारत मे स्थित पुन्नाटदेश चला गया।

और इधर, आचार्य भद्रबाहु उज्ञयिनी के समीपवर्ती भाद्रपद-देश पहुँचे तथा वहाँ समाधिमरण पूर्वक देह-त्याग किया।

---

१ जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर (१९५१,५६) से दो खण्डो मे प्रकाशित।

२ सिंघी जैन सीरीज, बम्बई से (१९४३ ई०) प्रकाशित।

३ मूल कथानक के लिए इसी ग्रन्थ की परिशिष्ट स० १ देखिए।

दुष्काल में विशाखाचार्य तो दक्षिण-दिशा की ओर चले गये किन्तु आचार्य भद्रबाहु के अन्य साथी आचार्य रमिल्ल, स्थविरयोगी एवं स्थूलभद्राचार्य ने सिन्धुदेश की ओर विहार किया। सिन्धुदेश भी दुर्भिक्ष की चपेट में था, फिर भी वहाँ के श्रावकों ने साधुसंघ की चर्या की उत्तम व्यवस्था की। किन्तु कालदोष से वे शिथिलाचारी हो गये। फलस्वरूप उनमें संघभेद हो गया। आगे चलकर उनके साधुसंघ अर्धफालक-सम्प्रदाय एवं यापनसंघक-सम्प्रदाय के नामसे प्रसिद्ध हुए। हरिषेण के अनुसार भद्रबाहु-चरित इसी घटना के बाद समाप्त हो जाता है।

[३] भद्रबाहु-चरित के तीसरे लेखक रामचन्द्र मुमुक्षु (१२ वी सदी के आसपास) हैं, जिनके " पुण्याश्रवकथाकोष[१] "के उपवासफलप्रकरण में भद्रबाहु- चरित वर्णित है। तदनुसार मगध में व्दादशवर्षीय दुष्कालके कारण आचार्य भद्रबाहु १२००० साधुओं के साथ दक्षिण भारत की ओर चले गये। इसके पूर्व इस कथानक मे सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वारा १६ स्वप्न-दर्शन एवं आचार्य भद्रबाहु द्वारा उनके उत्तर दिये जाने की चर्चा है, जो बृहत्कथाकोष में उपलब्ध नहीं है। दक्षिण की एक गुफा में आकाशवाणी से अपनी अल्पायु सुनकर उन्होंने विशाखाचार्य को ससंघ चोलदेश भेज दिया और स्वयं अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के साथ उसी गुफा मे आत्मस्थ होकर रहने लगे। उनके आदेश से मुनिराज चन्द्रगुप्त ने वहाँ कान्तार-चर्या की।

दुष्काल की समाप्ति के बाद विशाखाचार्य चोलदेश से लौटते समय मुनि चन्द्रगुप्त के पास आते हैं और उनके साथ मगध लौटते हैं। उसके बाद का कथानक कुछ विस्तार के साथ प्रायः बृहत्कथाकोष के समान ही है। (मूलकथानक के लिए इसी ग्रन्थ की परिशिष्ट देखें)।

[४] ११-१२ वी सदी के कवि श्री चन्द्रकृत अपभ्रंश कहकोसु (कथाकोष) मे भद्रबाहु का वही कथानक है, जो उक्त बृहत्कथाकोष का। अन्तर इतना ही है कि इसमें स्थूलिभद्र का अपरनाम समन्तभद्र, चन्द्रगुप्त का अपरनाम लघु भद्रबाहु अथवा लघु मुनि उल्लिखित है।

बृहत्कथाकोष में मायानगर की चर्चा तथा वहॉ गुरु भद्रबाहु के आदेश से चन्द्रगुप्त द्वारा आहार-ग्रहण का प्रसंग नही है, जब कि उक्त कहकोसु में है और यह प्रसग पुण्याश्रवकथाकोष के कान्तार-चर्या के प्रसंग के समान है।

---

१. जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर (१९६६ ई०) से प्रकाशित।

२ प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी अहमदाबाद (१९६६ ई) से प्रकाशित।

कहकोसु के अनुसार भद्रबाहु के आदेश से दुष्काल के समय विशाखसूरि अपना संघ लेकर तमिलदेश चले जाते हैं। मायानगर से चर्या के बाद लौटते समय विशिष्ट-ऋद्धि के कारण लघु भद्रबाहु (चन्द्रगुप्त) पृथिवी से ४ अंगुल ऊपर उठकर चलते थे जबकि विशाखाचार्य को कीचड़ से भरी भूमि में चलना पड़ता था।

[५] १६वीं सदी के आसपास रत्ननन्दी (अपरनाम रत्नकीर्ति) कृत भद्रबाहुचरित[1] के अनुसार पुण्ड्रवर्धन देश के कोट्टपुरनगर निवासी सोमशर्मा द्विज के यहाँ भद्रबाहु का जन्म हुआ। अपनी गिरनार-यात्रा के प्रसंग में आचार्य गोवर्धन उस नगर में पधारे और खेल-खेल में १४ गोलियाँ एक के ऊपर एक स्थिर रूप से रोप देनेवाले भद्रबाहु को देखकर तथा उन्हें भावी श्रुतकेवली जानकर उन्हें अपने साथ ले लिया और अध्ययन कराकर उन्हें मुनि दीक्षा दे दी। आगे चलकर वे अन्तिम श्रुतकेवली हुए।

उस समय अवन्ति देश की उज्ञयिनी नगरी में चन्द्रगुप्त का राज्य था। एक बार उसने १६ स्वप्न देखे। संयोग से अगले समय ही आचार्य भद्रबाहु १२००० साधुओं के संघ के साथ उज्ञयिनी पहुँचे। चन्द्रगुप्त ने उनसे स्वप्नों का फल जानकर जिन दीक्षा ले ली। एक समय आचार्य भद्रबाहु चर्या हेतु निकले और एक घर में एक शिशु ने बा, बा बा, "बा बा बा " कहा, जिसका अर्थ उन्होंने लगाया कि यह देश शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए, क्योंकि आगामी १२ वर्षों में यहाँ भयानक दुष्काल पड़ने वाला है। उन्होंने उसकी भविष्यवाणी कर अपने साधु- संघ को शिथिलाचार से बचाने हेतु दक्षिण-भारत के निरापद देश में जाने का आदेश दिया। श्रावकों के आग्रह पर भी वे न रुके और वहाँ से संघ-सहित प्रस्थान कर दक्षिण की एक गहन अटवी में जाकर रुके, जहाँ आकाशवाणी द्वारा अपनी अल्पायु जानकर वे मुनि चन्द्रगुप्त के साथ वहीं रह गए और विशाखाचार्य के नेतृत्व में समस्त साधु-समूह को चोल देश की ओर भेज दिया।

अटवी गुफा में भद्रबाहु ने चन्द्रगुप्त को कान्तार-चर्या का आदेश दिया। तीन दिन तक तो विधिपूर्वक पारणा न मिलने से उन्होंने उपवास किया, किन्तु चौथे दिन विधिपूर्वक पारणा की, इससे भद्रबाहु को बड़ा सन्तोष हुआ। कुछ ही दिनों में आचार्य भद्रबाहु ने समाधिमरण पूर्वक देह त्याग किया। मुनि चन्द्रगुप्त ने उनके चरणों की स्थापना कर उनकी आराधना की।

---

१. प० उदयलाल काशलीवाल द्वारा सम्पादित तथा सूरत (१९६६ ई०) से प्रकाशित।

श्रावकों के विशेष आग्रह पर रमिल्ल, स्थूलिभद्र एवं स्थूलाचार्य दक्षिण-भारत न जाकर उज्जैन में ही रह गए। कुछ दिनों के बाद वहाँ भयानक अकाल पड़ा। अकालजन्य दुष्प्रभाव के कारण उनका संघ शिथिलाचारी हो गया।

सुकाल आने पर विशाखाचार्य मंघ सहित चन्द्रगुप्त के पास लौटे और उनके साथ कान्तार-चर्या करते हुए उज्जयिनी लौट आए। रमिल्ल एवं स्थूलिभद्र की आज्ञा से उनके शिष्यों ने छेदोपस्थापना-विधि पूर्वक अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त कर लिया, किन्तु स्थूलाचार्य के शिष्यों ने उनकी आज्ञा नहीं मानी। इतना ही नहीं, उन्होंने क्रोधित होकर उनकी हत्या भी कर डाली, जिस कारण मरकर वे व्यन्तर-देव-योनि को प्राप्त हुए। सन्त्रस्त करते रहने के कारण शिष्यों ने उनकी आराधना की, उससे व्यन्तरदेव बड़ा प्रसन्न हुआ। आगे चलकर वह पर्युपासन नामक कुलदेवता के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका सम्प्रदाय अर्धफालक सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ, क्योंकि वह नग्नता को छिपाने के लिए बायें हाथ में वस्त्र -खण्ड लटकाकर चला करता था।

दीर्घकाल के बाद उज्जयिनी में चन्द्रकीर्ति नाम का एक राजा हुआ जिसकी रानी का नाम चन्द्रश्री था। उसकी पुत्री का नाम चन्द्रलेखा था। उसे अर्धफालक-सम्प्रदाय के साधुओं ने अपने ढग से प्रशिक्षित किया। युवावस्था को प्राप्त होते ही उसका विवाह बलभीनगर के राजा प्रजापाल के पुत्र लोकपाल के साथ सम्पन्न हुआ। उसने अपने पति लोकपाल से आग्रह कर अर्धफालक साधुओं को अपने राज्य में निमन्त्रित कराया। राजा प्रजापाल ने उनका वेश देखकर उनकी निन्दा की। तब चन्द्रलेखा की प्रार्थना पर साधुओं ने अपना वेश बदलकर श्वेत-वस्त्र धारण कर लिया और तभी से वे "श्वेताम्बर" कहलाए। यह घटना विक्रम-राज की मृत्यु के १३६ वर्ष अर्थात् सन् ७९ ई० के बाद की है। इस सम्प्रदाय के साधुओं ने स्त्री-मुक्ति, केवली-कवलाहार, सचेलकता एवं महावीर के गर्भापहरण आदि का प्रचार किया।

राजा लोकपाल की पुत्री का नाम नृकुल देवी था। उसका विवाह करहाटक नगर के राजा भूपाल के साथ सम्पन्न हुआ। रानी नृकुलदेवी के आग्रह से राजा लोकपाल ने उन श्वेताम्बर साधुओं को अपने नगर में निमन्त्रित किया। सवस्त्र एवं दण्डपात्रादि से युक्त देखकर राजा ने उन्हें जब मान्यता प्रदान नहीं की, तब रानी की प्रार्थना पर उन्होंने वस्त्र त्याग तो कर दिया, किन्तु अपना आचरण श्वेताम्बर साधुओं जैसा ही बनाए रखा। इस कारण इनका सम्प्रदाय यापनीय मंघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

राजा विक्रम की मृत्यु के १५२७ बाद वर्ष अर्थात् सन् १४७० ई० मे लोकामत (ढूँढियामत) प्रारम्भ हुआ।

[६] महाकवि रइधू (१५-१६वी सदी) की भद्रबाहु-कथा का आधार पुण्याश्रवकथाकोष एवं बृहत्थाकोष है। उसका सार आगे प्रस्तुत किया जायगा।

[७] १६वीं सदी में ही एक अन्य कवि नेमिदत्त ने भी अपने "आराधना-कथाकोष"[1] में भद्रबाहु-कथा लिखी, किन्तु उसका मूल आधार एवं स्रोत हरिषेण कृत बृहत्कथाकोष ही है। उसके कथानक में भी कोई नवीनता नहीं है।

आचार्य भद्रबाहु : एक भ्रम-निवारण

आचार्य भद्रबाहु के जीवन -वृत्त के विषय में एक तथ्य ध्यातव्य है कि दि० जैन पट्टावली में इस नामके दो आचार्यो के नाम आए हैं। एक तो वे, जो अन्तिम श्रुतकेवली है और दूसरे वे, जिनसे सरस्वतीगच्छ-नन्दि-आम्नाय की पट्टावली प्रारम्भ होती है [2]। द्वितीय भद्रबाहु का समय ई० पू० ३५ अथवा ३८ वर्ष है, अतः इन दोनों भद्रबाहुओं के समय में लगभग ३५० से भी कुछ अधिक वर्षो का अन्तर है। फिर भी कुछ लेखको ने सम्प्रति-चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के स्वप्नों के फल-कथन का भद्रबाहु-प्रथम से सम्बन्ध जोड़कर एक भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न की है।[3] यह सम्भव है कि सम्प्रति-चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के स्वप्नो का फल-कथन द्वितीय भद्रबाहु ने किया हो। ऐसा स्वीकार नही करने से इतिहास-प्रसिद्ध भद्रबाहु प्रथम एवं मौर्य चन्द्रगुप्त - प्रथम का गुरु - शिष्यपना तथा उसके समर्थक अनेक शिलालेखीय एव शास्त्रीय प्रमाण निरर्थक कोटि में आकर अनेक भ्रम उत्पन्न कर सकते है।

उक्त भद्रबाहुचरितो के तुलनात्मक अध्ययन करने से निम्न तथ्य सम्मुख आते है : –

[१] (क) आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) के समय उत्तर भारत के कुछ प्रदेशों मे अनुमानतः ई० पू० ३६३ से ई० पू० ३५१ के मध्य १२ वर्षो का भयानक दुष्काल पड़ा था। इसमें श्रावकों द्वारा सादर रोके जाने पर भी आचार्य भद्रबाहु रुके नही और वे अपने संघ के साथ चोल, तमिल अथवा पुन्नाट (कर्नाटक) देश चले गये।

(ख) आचार्य हरिषेण के अनुसार यह दुष्काल उज्जयिनी में पड़ा। अतः उन्होंने मुनि चन्द्रगुप्त (भूतपूर्व उज्जयिनी नरेश) अपरनाम

---

१ जिनवाणी प्रसारक कार्यालय कलकत्ता से प्रकाशित।

२ दे०प० कैलाशचन्द्र शास्त्री-जैन साहित्य का इतिहास-पूर्वपीठिका (वाराणसी, १९६३) पृ० ३४७-८,।

३ दे० इसी ग्रथ की परिशिष्ट स० ३ (७३-७४)।

विशाखाचार्य के साथ अपना संघ दक्षिण देश भेज दिया तथा स्वयं अकेले भाद्रपद देश जाकर समाधि ग्रहण कर ली।

(ग) अन्य कथाकारों के अनुसार यह दुष्काल मगध में पड़ा और वहाँ के राजा चन्द्रगुप्त को जैन दीक्षा देकर उनके साथ भाद्रबाहु संघ-सहित दक्षिण देश चले गये। रुग्ण हो जाने के कारण वे स्वयं तो मुनि चन्द्रगुप्त के साथ एक गुहाटवी मे रहे किन्तु विशाखाचार्य के नेतृत्व में अपने सघ को उन्होंने चोल, तमिल अथवा पुन्नाट देश की ओर भेज दिया।

(घ) हरिषेण के उज्ञयिनी विषयक दुष्काल के उल्लेख का आधार क्या था, इसकी जानकारी तो नही मिलती, किन्तु मगध के दुष्काल का समर्थन अर्धमागधी आगम के टीका-साहित्य से भी होता है। हरिषेण के अतिरिक्त प्रायः सभी कथाकारों ने मगध के दुष्काल की चर्चा की है। हरिषेण के एक अन्य उल्लेख से यह भी स्पष्ट है कि उज्ञयिनी के साथ-साथ सिन्ध-देश भी दुष्काल की चपेट में था, इसीलिए उनके अनुसार आचार्य रमिल्ल, स्थूलिभद्र एवं स्थूलाचार्य को वहाँ दुष्कालगत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

(ङ) कुछ लोगों को इसमें भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि दुष्काल वस्तुतः पड़ा कहाँ? वह मगध में पड़ा था अथवा उज्ञयिनी में पड़ा था या सिंध देश में? किन्तु यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो यह भ्रम स्वतः दूर हो जायगा। मेरे दृष्टिकोण से यह दुष्काल किसी एक प्रदेश में सीमित नहीं था बल्कि तत्कालीन उत्तर भारत का अधिकाश भाग उसकी चपेट में था किन्तु कवियो ने अनुश्रुतियों के आधार पर जो समझा या अनुभव किया अथवा जो कवि जिस प्रदेश का निवासी अथवा उससे सुपरिचित था, उसने उस प्रदेश के दुष्काल की चर्चा की है। अतः आवश्यकता है, उनके उल्लेखो के समन्वय की और उससे यही विदित होता है. उत्तर भारत विशेषतया मगध, उज्ञयिनी एवं सिन्धदेश दुष्काल - पीड़ित था।

(च) यह बहुत सम्भव है कि आचार्य भद्रबाहु अपने विहार के क्रम में मगध से दुष्काल प्रारम्भ होने के कुछ दिन पूर्व चले हों और उच्छकल्प[१]

१ वर्तमान में यह स्थान इलाहाबाद-कटनी रेल मार्ग पर "उचेहरा" के नाम से प्रसिद्ध है। यह एक छोटा सा ग्राम है। इतिहासकारो की मान्यता है कि यहाँ पर पूर्वकाल मे कभी परिव्राजको का साम्राज्य था।

होते हुए उज्जयिनी पहुँचे हों और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर स्वयं गये हों, या स्वयं वहीं रुककर अपने साधु-संघ को दक्षिण की ओर जाने का आदेश दिया हो।

[२] प्रायः यह प्रश्न उठता है कि मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त (प्रथम) मगध का राजा था अथवा उज्जयिनी का? किन्तु इसका उत्तर कठिन नहीं। क्योंकि चन्द्रगुप्त एक प्रतापी नरेश था। मगध की गद्दी प्राप्त करते ही उसने अपने प्रताप से पश्चिम में मालवा से सिन्धुदेश तक तथा दक्षिण के अनेक राज्यों को अपने अधीन कर लिया था। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से उज्जयिनी को अपनी उप-राजधानी बनाकर वह समय-समय पर वहाँ जाकर रहता होगा। यही कारण है कि अनुश्रुतियों के आधार पर किसी ने उसे मगध का राजा बताया तो किसी ने उज्जयिनी का। वस्तुतः वह दोनों नगरों अथवा प्रदेशों का राजा था।

[३] हरिषेण ने मौर्य चन्द्रगुप्त (प्रथम) को विशाखाचार्य से अभिन्न माना है, किन्तु उनके परवर्ती कवियों ने दोनों को पृथक्-पृथक् माना। हरिषेण के परवर्ती कवियों ने स्पष्ट ही लिखा है कि दक्षिणाटवी में मुनि चन्द्रगुप्त तो आचार्य भद्रबाहु के साथ रहकर उनकी सेवा करते रहे और भद्रबाहु के आदेश से विशाखाचार्य १२००० साधुओं के संघ का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़े। श्रवणबेलगोला एवं अन्यत्र के शिलालेखीय प्रमाणों से भी उक्त दूसरे तथ्य का समर्थन होता है।

[४] इसी प्रकार आचार्य भद्रबाहु के समाधिस्थल-विषयक जो विविध नाम मिलते हैं यथा-भाद्रपद-देश, दक्षिणाटवी, शुक्लसर, धवलसर या शुक्लतीर्थ, वे भी पाठकों के मन में भ्रम उत्पन्न करते हैं कि वास्तविक समाधि-स्थल कौन सा रहा होगा? किन्तु वे भी श्रवणबेलगोल के पर्यायवाची ही प्रतीत होते हैं। कथाकारों के कथन में शब्दभेद भले ही हो, मेरी दृष्टि से उनमें अर्थभेद नही मानना चाहिए।

[५] कवि रत्ननन्दि के अनुसार विशाखाचार्य के दक्षिण-भारत से लौटते ही रमिल्ल एवं स्थूलिभद्र के शिष्यों ने छेदोपस्थापना - विधिपूर्वक[१] अपना शिथिलाचार छोड़कर पूर्वावस्था प्राप्त कर ली किन्तु स्थूलाचार्य से क्रोधित होकर उनके कुछ क्रोधी साधु-शिष्यों ने उनकी हत्या कर दी।[२] यही शिथिलाचारी-संघ अर्धफालक-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि वह नग्नता को छिपाने के लिए बायें हाथ पर वस्त्र लटकाकर चलता था।

---

१ दे० रत्ननन्दी कृत भद्र बाहु चरित्र ४।७

२ दे० वही-४।१७

हरिषेण के परवर्ती प्रात. सभी कवियों ने इस घटना का उल्लेख किया है। श्वेताम्बर-मत एवं यापनीय-संघ की उत्पत्ति के विषय में भी इन कवियो ने स्वरुचि के अनुसार हीनाधिक मात्रा में स्पष्ट वर्णन किया है।

[६] चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्नो एवं जैनदीक्षा के बाद उनकी दक्षिणाटवी मे कान्तार-चर्या का उल्लेख हरिषेण ने नही किया, किन्तु पश्चाद्वर्ती प्रायः सभी कवियो ने किया। प्रतीत होता है कि कथानक को अधिक रोचक, मार्मिक एव सुरुचिसम्पन्न बनाने हेतु ही इन कवियो ने इन घटनाओं का समावेश किया होगा।

[७] अपभ्रंश-भाषा में भद्रबाहुचरित श्रीचन्द्रकृत कथाकोष में उपलब्ध है,जो प्रकाशित हो चुका है और उसके बाद तद्विषयक दूसरी रचना महाकवि रइधू द्वारा लिखित है, जो अब प्रकाशित हो रही है। इसका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:-

महाकवि रइधू कृत भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त-कथानक

रचना-परिचय -

प्रस्तुत कृति महाकवि रइधू की अद्यावधि अज्ञात एव अप्रकाशित लघुकृति है, जो सम्पादक को ऐ०प०दि०जै० सरस्वती भवन ब्यावर (राजस्थान) के शास्त्र-भण्डार से उपलब्ध हुई थी। ऐतिहासिक दृष्टि से वह अपभ्रंश-भाषा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसका मूलस्रोत पूर्ववर्ती-साहित्य विशेषतया रामचन्द्र मुमुक्षु कृत पुण्याश्रवकथाकोषम् है तथा कहीं-कही उस पर हरिषेण कृत बृहत्कथाकोष का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उक्त रचना में भद्रबाहु, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, नद एवं मौर्यवंश, प्रत्यन्त राजा (पर्वतक?) के विषय में तो संक्षिप्त वर्णन है ही, इनके साथ-साथ उसकी जो सबसे बड़ी विशेषता है, वह यह कि उसमें श्रुतपंचमी-पर्वारम्भ, कल्कि-अवतार एव षट्कालवर्णन के संक्षिप्त प्रकरण भी उपलब्ध हैं, जो अन्य भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त- कथानको मे दृष्टिगोचर नही होते।

उक्त रचना में कुल २८ कडवक है। उनमें प्राप्त कथावस्तु प्रस्तुत कृति के मूल कड़वकों के साथ हिन्दी एवं अंग्रेजी शीर्षको से स्पष्ट है, अतः विस्तार-भय से उसे यहाँ न देकर उसके कुछ तथ्यों को ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जो निम्न प्रकार है:-

१ पूर्ववर्ती साहित्य से भद्रबाहु, चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त आदि सम्बन्धी सन्दर्भ-सामग्री लेकर अपभ्रंश भाषा मे उनका प्रबन्ध-शैली मे प्रस्तुतीकरण।

२. तद्विषयक पूर्ववर्ती कथानकों में अनुपलब्ध कल्कि-राजाओं की शासन-प्रणाली पर प्रकाश एवं षट्काल, श्रुतपंचमी-पर्वारम्भ का सरल शैली में वर्णन।

३ अशोक के पुत्र का नकुल के रूप में उल्लेख, जब कि अन्यत्र उसका नाम कुणाल एव सुयश के रूप में उपलब्ध है।

४ पाटलिपुत्र का पाडलिपुर के नाम से उल्लेख।

५. सम्राट् चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्नों तथा उनके फल का वर्णन।

६ मौर्यवंशी नरेशो की ऐतिहासिक वशावली का प्रस्तुतीकरण (विशेष के लिए देखें इसी ग्रंथ की पृ.सं. १०२ की टिपपण्णी। रामचन्द्र मुमुक्ष कृत पुण्याश्रवकथाकोषम् मे भी यह वशावली उपलब्ध है। अन्तर यह है कि उन्होंने (मुमुक्ष ने) द्वितीय चन्द्रगुप्त को 'सम्प्रति' विशेषण से सयुक्तकर उसके पुत्र सिहसेन का भी उल्लेख किया है।

७ चन्द्रगुप्त (प्रथम) एव विशाखाचार्य की पृथक्-पृथक् रूप में मान्यता।

८ राजा नन्द के शत्रु को पच्चतवासि (प्रत्यन्तवासी) कहकर सीमान्तवर्ती राजा पुरु या पर्वतक की ओर सकेत।

९ दुष्काल के समय आचार्य रामिल, स्थूलिभद्र एव स्थूलाचार्य के पाटलिपुत्र में निवास का वर्णन।

१० भद्रबाहु का ससघ मगध से दक्षिण की ओर विहार। वे मुनि चन्द्रगुप्त के साथ अटवी में रहे और विशाख के नेतृत्व मे अपने समस्त सघ को चोल देश भेज दिया।

११ गुरु भद्रबाहु के आदेश से मुनि चन्द्रगुप्त द्वारा कान्तार चर्या।

१२ भद्रबाहु के स्वर्गारोहण के बाद चन्द्रगुप्त (प्रथम) ने उनके कलेवर को एक शिलातल पर रख दिया तथा एक भारी दीवाल मे उनके चरणों को अकित कर दिया। अपने हृदय मे भी उन्हे अकित कर लिया।

१३ सघभेद सम्बन्धी तीन प्रमुख सिद्धान्तों (नग्नता-विरोध, तथा स्त्रीमुक्ति एवं केवलि कवलाहार का समर्थन) के स्पष्ट उल्लेख।

१४ बलभीपुर की रानी स्वामिनी एव करहाटपुर की रानी जक्खिला की विचारधाराएँ एव उनका श्वेताम्बरमत एव बलिय सघ से सम्बन्ध का वर्णन।

महाकवि रइधू : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

प्रस्तुत भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक के प्रणेता महाकवि रइधू [वि. सं. १४४०-१५३०] अपभ्रंश- साहित्य के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। विपुल साहित्य - रचनाओं की दृष्टि से उनकी तुलना में ठहरने वाले अन्य प्रतिस्पर्धी कवि या साहित्यकार के अस्तित्त्व की सम्भावना अपभ्रंश-साहित्य में नहीं की जा सकती। रस की अमृत- स्रोतस्विनी प्रवाहित

करने के साथ-साथ श्रमण-संस्कृति के चिरन्तन आदर्शो की प्रतिष्ठा करनेवाला यह प्रथम सारस्वत है, जिसके व्यक्तित्व में एक साथ प्रबन्धकार, दार्शनिक, आचारशास्त्र-प्रणेता, इतिहासकार एवं क्रान्तिदृष्टा का समन्वय हुआ है।

महाकवि रइधू के निवास-स्थल के विषय में निश्चित जानकारी नही मिलती। किन्तु उनकी प्रशस्तियों से इतना निश्चित है कि उन्होंने गोपाचल (ग्वालियर) में अपनी साहित्य-साधना की थी। कुछ ग्रन्थो का प्रणयन उन्होंने तोमरवंशी राजा डूँगरसिंह के विशेष अनुरोध पर गोपाचल-दुर्ग में रहकर भी किया था। कवि की लोकप्रियता का इसी से पता चलता है कि उनकी प्रेरणा से गोपाचल-दुर्ग में राजकीय-व्यय पर लगभग ३३ वर्षों तक अगणित जैन-मूर्तियों का निर्माण एवं प्रतिष्ठाएँ हुई थीं, दुर्ग की लगभग ६३ गज ऊँची सर्वोच्च आदिनाथ-जिन की मूर्ति की स्वयं उन्होंने ही प्रतिष्ठा की थी।

महाकवि रइधू ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी में अनेक ग्रन्थों की रचना की जो निम्न प्रकार हैं:—

(१) पार्श्वनाथचरित (२) धन्यकुमारचरित (३) सुकोसलचरित (४) त्रिषष्ठिशलाका -महापुराणपुरुषचरित (५) पुण्याश्रवकथाकोष (६) यशोधरचरित (सचित्र) (७) कौमुदीकथा - प्रबन्ध (८) वृत्तसार (९) जिमंधरचरित (१०) सिद्धचक्र-माहात्म्य (११) सन्मतिजिनचरित (१२) मेघेश्वरचरित (१३) अरिष्टनेमिचरित (१४) वलभद्रचरित (१५) सम्यक्त्वगुणनिधानकाव्य (१६) सोलहकारण जयमाल (१७) दशलक्षण जयमाल (१८) अनस्तिमितकथा (१९) बारहभावना (२०) शान्तिनाथपुराण (सचित्र) (२१) आत्मसम्बोधकाव्य (२२) सिद्धान्तार्थसार (२३) संबोधपंचाशिका एवं (२४) भद्रबाहु- चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक।

उनकी ज्ञात किन्तु अनुपलब्ध रचनाएँ निम्न प्रकार है— (१) प्रद्युम्नचरित (२) करकंडुचरित एवं (३) भविष्यदत्तचरित।

रइधू-साहित्य की विशेषता

कवि रइधू के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ के आरम्भ एवं अन्त में विस्तृत प्रशस्तियाँ लिखी हैं। उनमें उन्होंने समकालीन

---

१ इनकी प्रतिलिपियाँ सम्पादक के पास सुरक्षित है तथा उनका सम्पादन-कार्य चल रहा है।

भट्टारकों, राजाओं, मूर्तिनिर्माताओं एवं नगरसेठों की विस्तृत एवं प्रामाणिक चर्चा की है। उसके आधार पर मध्यकालीन राजनैतिक एवं सामाजिक इतिहास लिखा जा सकता है।

वंश-वृत्त

रइधू-साहित्य की प्रशस्तियों के अनुसार वे संघपति देवराज के पौत्र एवं साहू हरिसिंह के पुत्र थे। उनकी माता का नाम विजयश्री था। वे अपने माता-पिता के तृतीय पुत्र थे। अन्य दो भाइयों के नाम थे-- बाहोल एवं माहणसिंह। रइधू की पत्नी का नाम सावित्री था तथा उनके पुत्र का नाम था उदयराज। जिस समय उसका जन्म हुआ उस समय कवि रइधू 'अरिष्टनेमिचरित' के प्रणयन में व्यस्त थे।[1]

प्रस्तुत रचना में रइधू ने भद्रबाहु के अतिरिक्त नन्द एवं मौर्यवंशी राजाओं तथा ब्राह्मण-चाणक्य, प्रत्यन्तवासी शत्रु-राजा आदि की जो चर्चा की है, उन पर विचार करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। अतः यहाँ पर उनका भी संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतीय इतिहास में नन्दवंशी राजाओं का महत्त्व

भारतीय इतिहास के निर्माण में मगध, विशेषतया उसके नन्द राजाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उनका वंशानुक्रम एवं राज्यकाल भले ही विवादास्पद हो और भले ही वह सर्वसम्मत न हो, फिर भी इतिहासकार यह मानने के लिए विवश हैं कि वे प्राचीन भारत के भी इतिहास को क्रमबद्ध बनाने के लिये ठोस आधार बने। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि मगध का इतिहास प्रायः पूरे भारत का इतिहास है क्योंकि प्राचीन भारत के इतिहास की उसके बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती।

राजनैतिक दृष्टि से नन्द राजाओं की प्रथम विशेषता यह है कि उन्होंने भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय क्षत्रियेतर-विशाल-साम्राज्य की सर्वप्रथम स्थापना की। दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने ब्राह्मण-धर्म की सर्वथा उपेक्षा की और तीसरी विशेषता यह थी कि उन्होंने छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त उत्तर-पूर्वी भारत को एकसूत्र में बाँधने का अथक प्रयत्न किया। यही कारण है कि उनसे रुष्ट पुराणकारों ने भी उन्हें अतिबल[2] की संज्ञा प्रदान की। अतः नन्दों ने अपने पुरुषार्थ से मगध-साम्राज्य को पश्चिम में गंगा, उत्तर में हिमालय और दक्षिण मे विन्ध्याचल तक विस्तृत किया था। विश्व-विजय का

---

१ महाकवि रइधू के व्यक्तित्व एव कृतित्व के विस्तृत परिचय के लिए देखिए-रइधू-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन-लेखक डॉ राजाराम जैन (राजकीय प्राकृत शोध सस्थान, वैशाली से १९७४ मे प्रकाशित)

२ विष्णुपुराण ४।२४।२० ।

आकांक्षी यवनराज सिकन्दर भारत-आक्रमण के समय पंजाब से आगे नहीं बढ़ सका. उसका मूल कारण नन्दों की शक्ति का प्रभाव ही था।

विविध परम्पराएँ

इन ऐतिहासिक नन्द राजाओं के विषय में प्राचीन साहित्य में बहुत-कुछ लिखा गया है। किन्तु दृष्टिकोणों की विविधता से उनकी अनेक घटनाओं में मेल नही बैठता। इन दृष्टिकोणों को वैदिक, बौद्ध एवं जैन परम्परा में विभक्त किया जा सकता है।

नन्द विषयक वैदिक-परम्परा के दर्शन विष्णुपुराण, भागवतपुराण, मत्स्यपुराण, वायुपुराण, कथासरित्सागर एवं मुद्राराक्षस नाटक (विशाखकृत) में होते हैं। इनमे नन्दवंश की उत्पत्ति, एवं कार्यकलापों की चर्चा मिलती है। उनके अनुसार नन्दवंश का संस्थापक-शासक महापद्म या महापद्मपति था। इस साहित्य मे उसका उल्लेख शूद्रगर्भोद्भव[१], सर्वक्षत्रान्तक[२], एवं एकराट्[३], जैसे विशेषणों के साथ किया गया है। इससे यह प्रतिभाषित होता है कि उसने शैशुनाग राजाओं के समकालीन इक्ष्वाकु, पाञ्चाल, काशी, कलिंग, हैहय, अश्मक, कुरु, मैथिल, शूरसेन एनं वीतिहोत्र प्रभृति राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। कथासरित्सागर[४], खारवेल-शिलालेख[५], आन्ध्रदेश में गोदावरी नदी के तट पर स्थित नान्देर[६] (नवनन्द देहरा नामक स्थान) तथा प्राचीन कुन्तलदेश के अभिलेखों[७], से भी उसके विशाल साम्राज्य के अधिपति होने का समर्थन होता है। वैदिक-साहित्य में उपलब्ध सन्दर्भो के अनुसार नवनन्दों ने १०० वर्षो तक लगातार शासन किया किन्तु आश्चर्य यह है कि नन्दवंश के सभी राजाओं के नाम इस साहित्य में नही मिलते।

उक्त पुराण-साहित्य के अनुसार नन्दवंश के अन्तिम राजा का नाम धन अथवा धननन्द[८], था। कथासरित्सागर के अनुसार उसके पास ९९० कोटि स्वर्णमुद्राएँ सुरक्षित थी[९]।

१-३. विष्णुपुराण ४।२४।२०

४. कथासरित्सागर-कथापीठलम्बक, तरंग ५ ६

५ खारवेल शिलालेख पंक्ति सं० १२

६-७ दे० C J Shah-Jainism in Northern India P 127-8

८. दे० Age of Imperial Unity Page 31

९ दे० कथासरित्सागर - नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वर १।२१

बौद्ध-परम्परा के महाबोधिवंश[१] में नन्द राजाओं की संख्या ९ बतलाई गयी है तथा उनके नाम इस प्रकार बतलाये गये है --- (१) उग्रसेन (२) पण्डुक (३) पण्डुगति, (४) भूतपाल (५)राष्ट्रपाल (६) गोविशांक (७) दाससिद्धक (८) कैवर्त्त एवं (९) धन।

महावंश के अनुसार अन्तिम राजा धननन्द का यह नाम उनके धन लोलुपी होने के कारण पड़ा। ग्रीक इतिहासकार कर्टियस ने इसका अग्रमीज के नाम से उल्लेख किया है। धन ने ८० कोटि धन गंगानदी के गड्ढे में सुरक्षित किया था। चमड़ा, गोंद, पत्थर तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओं पर भी उसने चुंगी (कर) लगाकर धन एकत्र किया था और उसकी आय को पृथक्-पृथक् रूप से सुरक्षित रखने की व्यवस्था भी की थी [२] ।

राज्यकाल के विषय मे महावंश में लिखा है कि कालाशोक के १० पुत्रो के २२ वर्षो तक राज्य करने के बाद नव-नन्दों ने भी २२ वर्षो तक राज्य किया और अन्तिम धननन्द का चाणक्य ने नाश किया[3] ।

जैन - परम्परा मे नन्दों के शासनकाल की चर्चा तो मिलती है, किन्तु सभी नन्दराजाओं के नामों के उल्लेख नही मिलते । उसके अनुसार नन्दराजाओं ने मगध जैसे एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। हाथीगुम्फा के ऐतिहासिक जैन शिलालेख[४] से यह भी सिद्ध है कि उन्होंने कलिंग को भी मगध का एक अंग बना लिया था।

नन्दों की जाति एवं धर्म

नन्दवश किस जाति का था तथा वह किस धर्म का अनुयायी था, इस विषय मे विविध मान्यताओं की चर्चा पूर्व में हो चुकी है। वैदिक पुराणों मे उसे शूद्रगर्भोद्भव बतलाया गया है और जैनाचार्य हेमचन्द्र ने उसे नापितपुत्र[५] कहा है। ग्रीक लेखक कर्टियस ने भी आचार्य हेमचन्द्र का समर्थन करते हुए लिखा है[६] कि-- 'उस अग्रमीज (धननन्द) का पिता वस्तुतः नाई था और उसके लिये यह भी सम्भव न था कि अपनी

---

१ दे० Age of Imperial Unity P 31

२ नाहर - प्राचीन भारत पृ० २२३।

३ वही पृ० २२१।

४ खारवेल शिलालेख पंक्ति संख्या १२।

५. परिशिष्टपर्व ६।२४४।

६ Mccrindale-The Invasion of India by Alexander Page 223

कमाई से पेट भर सके। पर क्योंकि वह कुरूप नही था, अतः रानी का प्रेम प्राप्त कर सकने में वह समर्थ हो गया। रानी के प्रभाव से लाभ उठाकर वह राजा का विश्वासपात्र बन गया और बाद में उसीने धोखे से राजा की हत्या कर दी। राजपुत्रों का संरक्षक बनकर उसने शासन के सर्वोच्च अधिकार प्राप्त कर लिए और फिर उन राजपुत्रों का भी उसने घात कर डाला। सन्दर्भित राजा (अग्रमीज) इसी का पुत्र है। इन तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि नन्दवंश क्षत्रियेतर था। वह नापित अथवा शूद्रकुलोद्भव था।

हाथीगुम्फा - शिलालेख[1] की एक पंक्ति में यह उल्लेख मिलता है कि कलिंग-नरेश खारवेल मगध को जीतकर वहाँ से अपने पूर्वजों से छीनी गयी कलिंग- जिन की मूर्ति को विजयचिह्न के रूप में लेकर वापिस लौटा था। इस सन्दर्भ मे यह स्पष्ट है कि नन्द नरेश ने अपनी दिग्विजय के समय जब कलिंग को पराजित किया था, तभी वह अपनी विजय के प्रतीक स्वरूप उस कलिंग-जिन (अर्थात् आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव) की राष्ट्रीय मूर्ति को छीनकर पाटलिपुत्र में ले आया था, जिसका बदला लगभग ३०० वर्षो के बाद सम्राट् खारवेल ने चुकाया। इतने दीर्घ अन्तराल में भी नन्दनरेशो के यहाँ उक्त मूर्ति का सुरक्षित रह जाना इस बात का सबल प्रमाण है कि वे जैनमूर्तिपूजक एवं जैनधर्मोपासक थे। चूँकि यह ईसा पूर्व द्वितीय सदी का शिलालेखीय प्रमाण है, अतः उसके आधार पर नन्द नरेशों के जैनधर्मानुयायी होने में भ्रम की कोई गुंजाइश दिखलाई नही पड़ती।

पिछले प्रसंग में यह बतलाया जा चुका है कि नन्दवंशी राजाओं ने उत्तर पूर्वी राज्यों को भारतीय इतिहास मे सर्वप्रथम एकसूत्र मे बाँधकर अपनी तेजस्विता एवं प्रताप-पराक्रम का परिचय दिया था। उनकी असाधारण सफलता, समृद्धि एव कीर्ति भी दिग-दिगन्त में चर्चित थी। ऐसे 'अतिबलं 'एकराट् एकच्छत्रं उपाधिधारी नन्द नरेशा ने जब निर्भीकतापूर्वक ब्राह्मणधर्म की उपेक्षा की और वे जैनधर्मानुयायी हो गये तभी सम्भवतः उस वंश को सुप्रतिष्ठा नही मिल सकी।

इस विषय में सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. आर. के. मुकर्जी का यह कथन महत्त्वपूर्ण है।वे लिखते हैं कि[2]-"In any case sixth and fifth centuries B C. hold out strange phenomena before us---Kshatriya chiefs founding popular

---

१ हाथीगुम्फा शिलालेख-पृ० १२ ।

२ Age of Imperial Unity PP 84-85

religious sects which menaced the vedic religion and Sūdra Leaders establishing a big empire in Āryāvarta on the ruins of kshatriya kingdoms."

जैन साहित्य के आधार पर मन्त्रीपद वंशानुगत था। नन्दवंश के राज्यकाल में इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। इस कारण उनके राज्यकाल में जैनधर्म को पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली। इस तथ्य का समर्थन महाकवि विशाखकृत मुद्राराक्षस नाटक से भी होता है, जिसमें एक पात्र स्पष्ट रूप से कहता है कि नन्दवंश के राज्यकाल में जैन अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उसके अनुसार चाणक्य ने भी जैनों पर विश्वास कर उन्हें विश्वस्त पदों पर नियुक्त किया था[१]।

नन्दराजाओं का काल

इतिहासकारों ने भगवान् महावीर का निर्वाणकाल ५२७ ई. पू. माना है। प्राचीन जैन-सन्दर्भो के अनुसार महावीर-निर्वाण के १५५ वर्ष बाद जो कि नन्दराजाओं का राज्यकाल है, चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) ने अन्तिम धननन्द नरेश से मगध का साम्राज्य प्राप्त किया था, अर्थात् ५२७-१५५=३७२ ई. पू. में वह मगध का अधिपति बना[२] और यही काल था नन्दवंश के अन्तिम नरेश का समाप्तिकाल भी।

वस्तुतः नन्द नरेशों की काल-गणना अत्यन्त जटिल है। वैदिक-परम्परा में जिस प्रकार पारस्परिक मेल नही बैठता, उसी प्रकार जैन-परम्परा में भी पारस्परिक मेल नहीं बैठता। आचार्य जिनसेन एवं मेरुतुंग ने चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण वीर-निर्वाण के २१५ वर्ष बाद माना है[३], जबकि आचार्य हेमचन्द्र ने १५५ वर्ष बाद[४]। इन दोनों मान्यताओं में ६० वर्ष का अन्तर है। यदि उक्त १५५ में से ६० वर्ष, जो कि वीर निर्वाण के बाद पालकवंशी राजाओं का राज्यकाल है, निकाल दिये जाएँ, तो हेमचन्द्र के अनुसार नन्दो का राज्यकाल ९५ वर्ष सिद्ध होता है, जो वैदिक पुराणों के साथ भी ५ वर्षो के अन्तर को छोड़कर लगभग ठीक बैठ जाता है[५] और इस प्रकार नन्दों का राज्यारम्भकाल ई. पू. ४६७ के आस–पास सिद्ध होता है, जिसमें अन्तिम नन्दराजा

---

१ Smith-Oxford History of India P 75

२ प० कैलाशचन्द्र शास्त्री-जैन साहित्य का इतिहास पूर्वपीठिका पृ० ३३६

३-४. वही पृ०३१२

५. दे० प० कैलाशचन्द्र शास्त्री-जैन साहित्य का इतिहास-पूर्वपीठिका पृ० ३३०-३१।

धननन्द का अन्तिम समय ई. पू. ४६७-९५=३७२ ई पू. के लगभग निश्चित होता है।

मौर्यवंश एवं उसका प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त

मौर्यवंश के उद्भव के सम्बन्ध मे अन्वेषक विद्वानो ने विविध प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। एक पक्ष के विद्वानों ने विष्णुपुराण एवं मुद्राराक्षस (के उपोद्घात) के आधार पर उसे राजा नन्द की मुरा नाम की शूद्रा दासी या वृषल [१] (धर्मघाती जाति की) पत्नी से उत्पन्न कहा है। दूसरे पक्ष के विद्वानों ने कथासरित्सागर, कौटिल्य-अर्थशास्त्र एवं बौद्ध-साहित्य के आधार पर उसे क्षत्रिय माना है। भारतीय इतिहास में इस दूसरे मत का ही प्राबल्य है क्योंकि अनेक सुप्रसिद्ध इतिहासकारो ने इसका समर्थन किया है।

श्रमणेतर-साहित्य में मौर्यवंश एवं उनके राज्य-- मगध के विषय में प्रशसामूलक वर्णन नही मिलता। उसमें मगध देश को कीकट [२] तथा वहाँ के निवासियो को व्रात्य कहा गया है। विद्वानों ने इन व्रात्यो को अनार्य मानकर भी उन्हे अदम्य साहसी एव दृढ़-निश्चयी बताया है।[४] इसके कारणो की खोज करते हुए मान्य इतिहासकार डॉ. बी. पी. सिन्हा लिखते हैं [५]-- 'सम्पूर्ण वैदिक-साहित्य मे मगध के प्रति जो विरोध की भावना स्पष्टतया व्यक्त है, इससे यह अनुमान तर्कसगत है कि उस समय (प्राचीन काल मे) मगध आर्येतर निवासियों का सुदृढ़ दुर्ग रहा होगा और उसने रूढ़िगत ब्राह्मण-ढाँचे मे विलीन होना अस्वीकार किया होगा।---- मगध प्राय सबसे पीछे ब्राह्मण-सभ्यता के अन्तर्गत आने वाले देशों में से था। व्रात्य आर्य रहे हो या नही, मगधवासियो मे वे पूर्णतया मिल गये थे और इसलिए वे ब्रह्मावर्त के आर्यो द्वारा हेय देखे जाते थे। यह जातीय विभिन्नता ही शायद मगध के व्यापक धार्मिक और राजनैतिक क्रान्तियो का कारण रही।' मौर्यवश की जाति कोई भी रही हो किन्तु यह तथ्य है कि उसके राजाओं ने अपने पुरुषार्थ-पराक्रम से न केवल मगध को अपितु भारत को विश्व के साम्राज्यो मे अनोखा एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कराया।

---

१. वृषो हि भगवान् धर्मो यस्तस्य कुरुते ह्यलम्। महाभारत १२।९०।१५

२ दे० भागवतपुराण एव वायुपुराण मे वर्णित मगधदेश वर्णन।

३ ५. दे० डॉ बी पी सिन्हा मगध का राजनैतिक इतिहास पृ ३ ४

उक्त मौर्यवंश के प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त को भारतीय इतिहास का प्रकाश स्तम्भ माना जाता है क्योंकि उसके नाम एवं काल से ही भारतीय इतिहास के तिथिक्रम का निर्धारण होता है। दुर्भाग्य से इस महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व का नाम विस्मृति के गर्भ में जा चुका था किन्तु धन्यवाद है उन प्राचीन ग्रीक-इतिहासकारों को, जिन्होंने उसकी शौर्य-गाथाओं एवं आदर्श कार्य -कलापों की अपने इतिहास-ग्रन्थों मे चर्चा की। उन्होंने उसका 'सैण्ड्रोकोट्टोस' के नाम से स्मरण किया। सर विलियम जोन्स भी कम श्रद्धास्पद नही, जिन्होंने सर्वप्रथम यह सुझाया कि ग्रीक-इतिहासकारों का सैण्ड्रोकोट्टोस ही मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त (प्रथम) हो सकता है। सर जोन्स के इसी अनुमान के आधार पर प्राचीन भारत के लुप्त इतिहास की खोजबीन की गयी और अन्त में वह वास्तविक भी सिद्ध हुआ। भारतवर्ष के इतिहास-लेखन के लिए सुनिश्चित तिथिक्रम का आधार होने के कारण सुप्रसिद्ध विद्वान् रैप्सन ने उसे भारतीय इतिहास का सुदृढ़ लंगर (The sheet-anchor of Indian chronology) कहा है।

किन्तु जिस प्रकार मौर्य जाति के विषय में विभिन्न मतभेद हैं, उसी प्रकार चन्द्रगुप्त के जीवन-वृत्त के विषय में भी। वैदिक-साहित्य में विष्णुपुराण, कथासरित्सागर एवं मुद्राराक्षस-नाटक में उसके जीवन-वृत्त की चर्चा की गयी है, किन्तु उनमें परस्पर संगति नहीं बैठती। जैन एवं बौद्ध-साहित्य में भी तद्विषयक चर्चाएँ मिलती हैं और उनकी अनेक घटनाओं में यत्किंचित् हेर-फेर के साथ समानता भी है। इनका तुलनात्मक अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय है, जो विस्तारभय से यहाँ सम्भव नही। किन्तु यह निश्चित है कि जब भी उस पर निष्पक्ष शोध-कार्य होगा, उससे न केवल चन्द्रगुप्त सम्बन्धी अपितु पूरे मौर्य-वंश सम्बन्धी कई भ्रान्तियों के निराकरण होने की सम्भावनाएँ हैं । इस दृष्टि से जैन-साहित्य के भगवती-आराधना, तिलोयपण्णत्ति, बृहत्कथाकोष, अर्धमागधी आगम-साहित्य सम्बन्धी निर्युक्ति एवं चूर्णी-साहित्य तथा परिशिष्टपर्वन् तथा बौद्ध-साहित्य के महावंश एवं मंजुश्रीमूलकल्प विशेष महत्त्व के ग्रन्थ हैं।

प्राकृत, संस्कृत एवं कन्नड़ के जैन-साहित्य एवं शिलालेखों में मौर्य चन्द्रगुप्त (प्रथम) का परिचय बड़े ही आदर के साथ दिया गया है। तिलोयपण्णत्ति (चतुर्थशती के आसपास में लिखित) के अनुसार मुकुटधारी राजाओं में अन्तिम राजा चन्द्रगुप्त (मौर्य, प्रथम) ही था, जिसने जिनदीक्षा धारण की। उसके बाद कोई भी मुकुटधारी राजा दीक्षित नही हुआ। यथा:---

मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्ख धरिद चंदगुत्तो य।
तत्तो मउडधरा दुप्पव्वज्जं णेव गेण्हंति।।४।१४८१

केवलियों एवं श्रुतकेवली आचार्यों के क्रम में चन्द्रगुप्त का उक्त उल्लेख स्वयं अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इस उल्लेख से इसमें भी सन्देह नहीं रहता कि अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु एवं चन्द्रगुप्त (प्रथम) समकालीन हैं।

जैन-साहित्य एवं अन्य शिलालेखीय प्रमाणों से यह सिद्ध है कि वह अपने अन्त समय में जैन धर्मानुयायी हो गया था तथा आचार्य भद्रबाहु से जैन-दीक्षा लेकर वह उनके साथ दक्षिण-भारत में स्थित श्रवणबेलगोला चला गया था। उसके जैनधर्मानुयायी होने के विषय में इतिहासवेत्ता राईस डेविड्स का निम्न कथन पठनीय है-- 'चूँकि चन्द्रगुप्त जैनधर्मानुयायी हो गया था, इसी कारण जैनेतरों द्वारा वह अगली १० शताब्दियों तक इतिहास में उपेक्षित ही बना रहा[१]।'

इतिहासकार टॉमस ने तो यहाँ तक लिखा है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त जैन समाज के महापुरुष थे। जैन साहित्यकारो ने यह कथन एक स्वयंसिद्ध और सर्वविदित तथ्य के रूप में लिखा है। इसके लिए उन्हें किसी भी प्रकार के अनुमान प्रमाण को प्रस्तुत करने के आवश्यकता का अनुभव नही हुआ। इस विषय में अभिलेखीय प्रमाण अत्यन्त प्राचीन एवं असन्दिग्ध है। मेगास्थनीज के विवरणों से भी यह विदित होता है कि उसने (चन्द्रगुप्त ने) ब्राह्मणों के सिद्धांतों के विरोध मे श्रमणों (जैनों) के उपदेशों को स्वीकार किया था[२]। महाकवि रइधू ने चन्द्रगुप्त का चित्रण एक ऐतिहासिक जैन महापुरुष के रूप में किया है।

जैन कालगणना के अनुसार उसका राज्याभिषेक-काल ई. पू. ३७२ के आस-पास सिद्ध होता है।

चाणक्य

ई. पू. चौथी सदी के आसपास अध्यात्मवादियों ने जिस प्रकार अध्यात्म एवं दर्शन के द्वारा समाज के नव-निर्माण मे अपना योगदान किया, उसी प्रकार समाज एव राजनीति-विशारदों ने भी। इस दिशा मे प्लेटो, अरस्तू एवं आचार्य चाणक्य के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके विचारों ने विश्व-समाज को सर्वाधिक प्रभावित किया है। इसका मूल कारण, आचार्य हरिभद्र के शब्दों में, यह था कि वे 'अकारण कल्याणमित्र' थे। सर्वोदयी उपलब्धियों का फलभोग वे स्वयं नही, मानव-मात्र के लिए

---

१. दे बुद्धिष्ट इण्डिया पृ १६४।

२. दे जैनिस्म ऑर अर्ली फैथ ऑफ अशोक पृ २३।

भी नही, अपितु विश्व के प्रत्येक प्राणी को कराना चाहते थे। उनको ध्यान में रखकर उन्होंने अपनी व्यक्तिगत स्वार्थलिप्साओं से ऊपर उठकर तथा त्याग और तपस्या के धरातल पर रहकर ही सोचा और इस प्रकार उन्होंने स्वस्थ समाज के निर्माण की दिशा में अभूतपूर्व कार्य किया। पूर्वोक्त दो समाज-निर्माताओं को यूनान ने जन्म दिया और लगभग उन्हीं के समकालीन अन्तिम समाज-निर्माता को भारत -भूमि ने। इनके सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक सिद्धांतों से सारा विश्व गौरवान्वित है।

चाणक्य सम्बन्धी विविध परम्पराएँ

प्लेटो एवं अरस्तू के विषय में विद्वानों ने शोध-खोजकर सर्वांगीण प्रामाणिक इतिवृत्त तैयार कर उसे प्रकाशित कर दिया है और वह प्रायः सर्वसम्मत है। आचार्य चाणक्य के महनीय व्यक्तित्व सम्बन्धी विविध परम्परागत आख्यान भी प्रचुर मात्रा में लिखे गये, किन्तु उनमें एकरूपता न होने के कारण उनके यथार्थ इतिवृत्त की खोज दुरूह हो गयी है।

वैदिक, बौद्ध एवं जैन-परम्परा में चाणक्य को पारंगत ब्राह्मण-विद्वान् के रूप में स्वीकार कर उनके जीवन-वृत्त का अपने-अपने ढंग से वर्णन किया जाता रहा है। सभी ने समान रूप से इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उन्होंने अन्तिम नन्द नरेश धननन्द पर क्रुद्ध होकर उसे समूल नष्ट कर दिया और चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) को मगध की गद्दी पर अभिषिक्त किया था। बौद्ध एव जैन परम्परा की चाणक्य -कथा कुछ अंशों में समान सिद्ध होती है।

जैनेतर चाणक्य -कथाओं पर अनेक विद्वानों ने प्रकाश डाला है और वे चर्चित भी हो चुकी हैं किन्तु जैन-परम्परा की चाणक्य-कथाएँ प्रायः उपेक्षित जैसी रही हैं, जब कि उनमें अनेक ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित हैं। उनमें से कुछ के सारांश यहां प्रस्तुत किये जा रहे है : —

जैन-परम्परा के अनुसार कुटल-गोत्रीय होने से चाणक्य का अपर नाम कौटल्य अथवा कौटिल्य एवं चणक का पुत्र होने से उसका नाम चाणक्य पड़ा। आचार्य हेमचन्द्र कृत अभिधान-चिन्तामणि में चाणक्य के अपरनाम वात्स्यायन, मल्लिनाग, कुटल, द्रामिल, पक्षिलस्वामी, विष्णुगुप्त एवं अंगुल कहे गये हैं। ये कथाएँ बृहत्कथाकोष, उत्तराध्ययन सूत्र-टीका, आवश्यक सूत्र-वृत्ति, आवश्यक निर्युक्ति-चूर्णि, कहकोसु (श्रीचन्द्र), पुण्याश्रवकथाकोषम्, स्थविरावली-चरित (हेमचन्द्र) एवं आराधनाकथाकोष प्रभृति ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। जैन चाणक्य-कथाओं में विविधता भले ही हो, किन्तु उनकी विशेषता यही है कि उनमें चाणक्य के उत्तरवर्ती जीवन का भी वर्णन है, जो जैनेतर चाणक्य -कथा में नहीं मिलता।

बृहत्कथाकोषकार[१](९३१ई.) के अनुसार चाणक्य पाटलिपुत्र निवासी कपिल ब्राह्मण एवं देविला ब्राह्मणी का पुत्र था। शीघ्र ही वह वेद-वेदांग में पारंगत हो गया। युवावस्था को प्राप्त होते ही उसका विवाह यशोमति नाम की एक ब्राह्मणी कन्या के साथ हो गया। चाणक्य की बुआ बन्धुमती का विवाह नन्दनरेश के कावी नामक एक मन्त्री के साथ सम्पन्न हुआ।

अन्य किसी समय प्रत्यन्तवासी किसी शत्रुराजा ने मगध पर आक्रमण कर दिया तो अपने मन्त्रियो की सलाह से नन्दनरेश के आदेशानुसार मन्त्री कावी ने कोषागार से प्रचुर मात्रा में धन देकर शत्रु को शान्तकर वापिस लौटा दिया। बाद में नन्द ने अपना कोषागार खाली देखकर तथा कुछ चुगलखोरों के बहकावे में आकर कावी को सपरिवार अन्धकूप मे डाल दिया और उसे प्रतिदिन के भोजन के रूप में सकोरा भर सत्तू एव पानी देने लगा। भूख के कारण परिवार के लोग तो मर गये किन्तु कावी किसी प्रकार जीवित रहा।

तीन वर्ष बाद उसी शत्रु ने मगध पर पुन: आक्रमण किया। तब नन्द ने कावी से राजसभा में क्षमायाचना कर शत्रु को पुनः शान्त करने का अनुरोध किया। कावी ने पुन. राजकोष से धन देकर शत्रु को सन्तुष्ट कर वापस लौटा दिया।

एक दिन कावी ने किसी को दर्भसूची खोदते हुए देखकर उससे उसका कारण पूछा। तब उसने अपना नाम चाणक्य बतलाकर कहा कि दर्भसूची ने मेरे पैर मे गड़कर घाव कर दिया, अत. उन्हे जड़मूल से नष्ट कर रहा हूँ। कावी उसे दृढ़निश्चयी एव चतुर जानकर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा उसे नन्दनरेश से अपना बदला लेने का उत्तम माध्यम सोचकर उसने उसे अपना मित्र बना लिया।

एक दिन उस कावी मन्त्री ने राजसभा की एक दीवाल पर एक श्लोक[२] लिख दिया। चाणक्य ने भी उसीके नीचे वही श्लोक लिख दिया। इसका तात्पर्य था कि कावी और चाणक्य दोनो एक ही विचारधारा के व्यक्ति है।

एक दिन चाणक्य की पत्नी ने चाणक्य से कहा कि राजा नन्द ब्राह्मणो को कपिला गाय भेट करता है, अत· जाकर ले आना चाहिए। चाणक्य गाय-प्राप्ति के लोभ मे नन्द की राज्यसभा में पहुँचकर अग्रासन पर बैठ जाता है तथा अन्य आसनो पर अपने दर्भासन, कदम्बक, कुण्डिका आदि वस्तुएँ रख देता है। अग्रासन पर एक कुरूप व्यक्ति को बैठा देखकर राजा नन्द को क्रोध आ जाता है और उसे वह अर्धचन्द्र दिलवाकर राज्यसभा से बाहर निकलवा देता है।

---

१ बृहत्कथाकोष कथा स. १४३, मूलकथा इसी पुस्तक की परिशिष्ट मे देखे।

२ वही श्लोक सख्या ३७ ।

कावी तो यह चाहता ही था। चाणक्य क्रोध में भरकर नन्दवंश को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर अपने कार्य मे महायता करने हेतु एक सुयोग्य युवक की खोज करता है। उसी समय चन्द्रगुप्त से उसकी भेंट होती है और चाणक्य उसका हाथ पकड़कर नगर के बाहर चला जाता है। वे दोनों तीव्रगामी धोड़ों पर सवार होकर राज्यप्राप्ति का उपाय खोजते-खोजते दूर देश जाकर एक जलदुर्ग में छिप जाते हैं।

चाणक्य के पाटलिपुत्र-पलायन का वृत्तान्त सुनकर एक प्रत्यन्तवासी राजा चाणक्य को खोजकर अपने यहाँ ले आया। प्रत्यन्तवासी सभी राजा इकट्ठे हुए और नन्द नरेश को पराजित करने का निर्णय कर राजा पर्वत के साथ मगध मे युद्ध करने हेतु धन-संचय करने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने प्राथमिक-प्रक्रिया के रूप में नन्द के शासन के रहस्य-भेदों की जानकारी हेतु गुप्तचर छोड़ दिये। चाणक्य ने शीघ्र ही अत्यन्त चतुराई पूर्वक सभी को सुसंगठित कर राजा नन्द को मरवा डाला तथा चन्द्रगुप्त को कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का राजा बनाया। अपना लक्ष्य पूरा कर चाणक्य ने जैन-दीक्षा ले ली। वह अपने ५०० शिष्यो के साथ गतियोग (पद-यात्रा) से दक्षिणापथ स्थित वनवास स्थल पर पहुँचा और वहाँ से पश्चिम-दिशा मे महाक्रौञ्चपुर के एक गोकुल नाम के स्थान मे वह ससंघ कायोत्सर्ग-मुद्रा मे बैठ गया।

महाक्रौञ्चपुर-नरेश का नाम था सुमित्र। नन्द नरेश की मृत्यु के बाद उसका सुबन्धु नाम का एक मन्त्री चाणक्य मे क्रुद्ध होकर तथा पाटलिपुत्र छोड़कर सुमित्र के मन्त्री के रूप में कार्य करने लगा था और चाणक्य से प्रतिशोध लेने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था ही। जब राजा सुमित्र को विदित हुआ कि उसके राज्य में चाणक्य मुनि का संघ आया है, तो वह सुबन्धु के साथ उनके दर्शनार्थ गया। सुबन्धु ने बदले की भावना से चाणक्य के चारो ओर घेराबन्दी कर आग लगवा दी जिससे सभी साधुओं के साथ उसकी मृत्यु हो गयी।

कवि हरिषेण ने अन्त में लिखा है कि--- दिव्यक्रौञ्चपुर की पश्चिम-दिशा में चाणक्य मुनि की एक निषद्या बनी हुई है, जहाँ आजकल (अर्थात् कवि हरिषेण के समय में) भी. साधुजन दर्शनार्थ जाते रहते हैं।

सिरिचन्द कृत कहकोसु एव नेमिदत्त कृत आराधनाकथाकोष मे भी चाणक्य की यही कथा मिलती है।

आवश्यकसूत्र वृत्ति, आवश्यकनिर्युक्ति एव चूर्णि, उत्तराध्ययनसूत्र टीका एवं परिशिष्टपर्व में भी चाणक्य की कथा मिलती है किन्तु उनके कुछ घटनाक्रमों का मेल बृहत्कथाकोष के घटनाक्रमों से नही बैठता।

आवश्यकनिर्युक्ति चूर्णी[1] के अनुसार चाणक्य का जन्म गोल्ल जनपदान्तर्गत चणयग्राम में हुआ था। उसके पिता का नाम चणक ब्राह्मण और माता का नाम चणेश्वरी था। वे जैनधर्म के परम भक्त थे। उनके यहाँ जैन-मुनियों का निवास प्रायः ही होता रहता था। संयोग से उन्ही की उपस्थिति में चाणक्य का जन्म हुआ।

जन्मकाल में ही उसके मुख में दाँत देखकर जैन-मुनियों ने भविष्यवाणी की कि वह आगे चलकर सम्राट् बनेगा। इससे उसके पिता चिन्तित हो उठे क्योंकि वे उसे जैन-साधु के रूप मे देखना चाहते थे। अतः पिता ने उसके उस दाँत को तुड़वा दिया। तब साधुओं ने पुनः भविष्यवाणी की कि अब वह स्वयं सम्राट् न बनकर किसी दूसरे को सम्राट् बनायेगा और उसके माध्यम से वह शासन करेगा।

श्रावक चाणक्य को चतुर्दश विद्याओं (शिक्षादि ६ अंग, ऋग्वेदादि ४ वेद एवं मीमांसा, न्याय, पुराण एवं धर्मशास्त्र) का अध्ययन कराकर उसके पिता ने एक विद्वान् ब्राह्मण की कृष्णवर्ण वाली यशोमति नाम की कन्या के साथ उसका विवाह करा दिया।

एक बार यशोमति अपने भाई के विवाह में चणय ग्राम जाती है, जहाँ दरिद्रता के कारण वह अपनी ही बहनो एवं भाभियों से अपमानित होती है। इस कारण चाणक्य को भी बड़ा दुःख होता है और उसी समय से वह धनार्जन का दृढ़ निश्चय करता है।

चाणक्य को विश्वस्त सूत्रो से यह विदित होता है कि मगध सम्राट् धननन्द प्रत्येक कार्तिक पूर्णमासी के दिन ब्राह्मणों को दान देता है। अतः वह उपयुक्त समय पर धननन्द की दानशाला मे जाकर राजा के लिए निर्धारित आसन पर बैठ जाता है और उसे वहाँ से उठकर मंत्री द्वारा बतलाये गये दूसरे-दूसरे आसनो पर भी वह (चाणक्य) स्वयं न बैठकर उन पर अपने दण्ड, माला एवं यज्ञोपवीत आदि रख देता है। चाणक्य की इस उद्दण्डता से परिचारक क्रुध्द होकर उसको दानशाला से निकाल देता है। इस कारण अपमानित होकर वह पुत्र, मित्र एवं ऐश्वर्य सहित धननन्द को जड़मूल से उखाड़ फेंकने की प्रतिज्ञा करता है। यथा --

---

१ आगमोदय समिति बम्बई (१९१६ १७) द्वारा प्रकाशित तथा दे० स्थविरावलीचरित (याकोबी द्वारा सम्पादित, कलकत्ता १९३२ ई) अष्टम सर्ग।

सकोशभृत्यं ससुहृत्पुत्रं सबलवाहनम्।
नन्दमुन्मूलयिष्यामि महावायुरिव द्रुमम् ।। (स्थविर० ८/२२५)

चाणक्य को जैन-साधुओं की पूर्वोक्त भविष्यवाणी का स्मरण हो आता है। अतः वह किसी सुयोग्य युवक की खोज में पाटलिपुत्र से निकलता है और मयूरपोषकों के एक ग्राम में पहुँचकर वहाँ के एक मुखिया की गर्भवती कन्या को चन्द्रपान का दोहला पूर्ण कराकर उस मुखिया से प्रतिज्ञा कराता है कि उस कन्या से यदि पुत्र उत्पन्न होगा तो वह उस (चाणक्य) को भेंट कर देगा। कृतज्ञ मुखिया इस शर्त को तत्काल स्वीकार कर लेता है।

संयोग से मुखिया की पुत्री को भी पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है उसका नाम चन्द्रगुप्त रख दिया जाता है। चाणक्य छिपे-छिपे उसकी परीक्षा करता रहता है तथा उसमें राजा बनने के सन्तोषजनक लक्षण पाकर वह उस मुखिया को अपनी पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाता है और चन्द्रगुप्त को अपने साथ में ले जाकर स्वयं उसे प्रशिक्षित करता है। ६-७ वर्षो के बाद चाणक्य एव चन्द्रगुप्त सैन्य-संगठन करके मगध पर आक्रमण करते हैं, किन्तु उसमें असफल हो जाते हैं।

धननन्द व्दारा चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त इसलिए पराजित हो गये थे क्योंकि उन्होंने उग्रवादी सीमान्तवर्ती प्रदेशों को अपने अधिकार में किये बिना ही मगध जैसे सुसंगठित एवं सशक्त राज्य पर आक्रमण किया था। इस प्रसग में एक मनोरंजक कथा भी उल्लिखित है। तदनुसार, पराजित चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त एक ग्राम मे घूम रहे थे । घूमते-घूमते वे एक झोपड़े के समीप पहुँचे। उस झोपड़े में गृहस्वामिनी रोटी पकाकर अपने बच्चे को परोस रही थी। वह बच्चा रोटी के बीच का हिस्सा खाकर उसके किनारे फेंक दे रहा था। यह देखकर गृह स्वामिनी ने कहा- "यह बालक तो वैसा ही अनर्थ कर रहा है, जैसा चन्द्रगुप्त ने किया।" उस बच्चे ने उत्सुकतापूर्वक पूछा कि चन्द्रगुप्त कौन है और उसने क्या अनर्थ किया है? इसपर गृहस्वामिनी ने कहा - "बच्चे, तू रोटी के किनारे-किनारे छोड़कर केवल बीच-बीच का ही हिस्सा खाये जा रहा है। चन्द्रगुप्त भी राजा बनने का स्वप्न तो देखता है, किन्तु उसे यह भी पता नही है कि राजा बनने के लिए सर्वप्रथम सीमान्त प्रदेशो को अपने अधिकार में ले लेना चाहिए। सीमा को अधिकार मे किये बिना मध्यभाग को कोई कैसे अपने अधिकार में रख सकता है? अपनी इसी भूल के कारण वह अभी पराजित हुआ है और आगे भी होता रहेगा।

"स्थविरावलीचरित" में भी इसी से मिलती-जुलती कथा मिलती है। उसके अनुसार -"जिस प्रकार कोई बच्चा अपनी थाली के किनारे के शीतल भाग से ग्रास लेने के बजाय लालचवश बीच के उष्ण भाग में अँगुली डालकर अपनी अँगुली को जला लेता है, उसी प्रकार चाणक्य-चन्द्रगुप्त की भी पराजय हुई क्योंकि उसने शत्रु के सुसगठित क्षेत्र पर आक्रमण करने से पूर्व आसपास के प्रदेशों पर अपना अधिकार नहीं किया। उससे शिक्षा लेकर वह चाणक्य हिमवन्त-कूट गया और वहाँके राजा पर्वतक से मित्रता-समझौता कर सर्वप्रथम सीमान्त - प्रान्तों को अपने वश मे किया।"तत्पश्चात् अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ाकर तथा उपयुक्त अवसर देखकर मगध पर आक्रमण कर धननन्द को पराजित किया तथा उसे अपनी दो पत्नियो एव एक पुत्री के साथ पाटलिपुत्र से निकालकर चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक किया।[1]

स्थविरावलीचरित के अनुसार [2] चाणक्य बिन्दुसार का भी मन्त्री था। मजुश्रीमूलकल्प से भी इसका समर्थन होता है। यथा:-

कृत्वा तु पायक तीव्र त्रीणिराज्यानि वै तदा।
दीर्घकालभिजीवी सौ भविता द्विज कुत्सितः॥४५५-५६

चाणक्य ने धननन्द के भूतपूर्व मन्त्री सुबन्धु को भी बिन्दुसार का आमसचिव बनवा दिया और स्वय वह मन्त्रिपद का परित्याग कर वन मे साधना करते हुए समाधिकरण का इच्छुक था किन्तु दुष्ट सुबन्धु ने किसी कारणवश उसके निवास मे आग लगवा दी,जिससे जलकर वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

कुछ विद्वानों को इसमे सन्देह हो सकता है कि चाणक्य जब ब्राह्मण था, तब वह जैन कैसे हो सकता है? उसके उत्तर स्वरूप केवल इतना जान लेना पर्याप्त है कि जैन कोई जाति नही, वह एक धर्म है और जो उस धर्म का अनुयायी है, वही जैन कहला सकता है। जैन-सिद्धात के अनुसार जाति जन्म से नही, कर्म से बनती है। आगे चलकर भले ही उस मान्यता में अन्तर आ गया हो किन्तु चाणक्य के समय तक सभी धर्मो के प्रति पारस्परिक उदारता की भावना थी और कोई भी वश या परिवार किसी भी धर्म का अनुयायी हो सकता था। उससे उसकी सामाजिक-प्रतिष्ठा पर कोई आँच नहीं आती थी। भगवान् महावीर के प्रधान गणधर का नाम गौतम था, जो वेद-वेदाग के प्रकाण्ड ब्राह्मण-पण्डित थे किन्तु वे जैनधर्मानुयायी बनकर आद्य जैनगुरु कहलाये। इन सन्दर्भो को ध्यान मे रखकर ब्राह्मण चाणक्य को भी जैनधर्मानुयायी मानने मे कोई आपत्ति नही।

---

१ स्थविरावलीचरित ८।३०१-१२।

२ वही ८।४४३-६९।

जैनेतर-साहित्य में चाणक्य के उत्तरवर्ती जीवन के विषय में चर्चा क्यों नही? उसका सम्भवतः एक कारण यह भी हो सकता है कि चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक के कुछ वर्षो के बाद ही चाणक्य ने जैनमुनिपद धारण कर लिया था, इसी कारण उन्होने सम्भवतः उसके जीवन की उपेक्षा की। इस प्रसंग मे सुप्रसिद्ध इतिहासकार राइस डेविड्स का यह कथन पठनीय है[1] :–The Linguistic and Epigraphic evidence so far available confirms in many respects the general reliability of traditions current amongst the Jainas

जैन-परम्परा के आधार पर चाणक्य का कार्यकाल अनुमानतः ई० पू० ३६० से ई० पू० ३३० के मध्य होना चाहिए।

प्रत्यन्त राज्य एवं उनके राजा

इतिहासकारो की शोध-खोज के अनुसार ई०पू० छठी सदी के पूर्वार्ध में भारतीय राजनैतिक एकता उतनी सुदृढ़ नहीं हो पाई थी, जितनी आवश्यक थी। विशेष रूप से पश्चिमोत्तर-भारत (१९४७ ई० के पूर्व) की सीमाएँ अनेक राज्यों मे विभक्त थीं। राजाओं मे परस्पर मे ईर्ष्या एव विद्वेष होने के कारण वे एक दूसरे को नीचा दिखाने या समाप्त करने का तो प्रयत्न करते थे, किन्तु एक सूत्र मे बँधकर देशोत्थान का विचार नहीं कर पाते थे। यही कारण है कि भारतवर्ष की श्री और सौन्दर्य पर विदेशियो की वक्रदृष्टि पड़ी और अवसर पाकर वे कभी व्यापारियों के रूप मे और कभी आक्रमणकारियों के रूप मे भारतीय सीमाओं को अपने अधिकार में करते रहे। हेरोडोटस, टीसियस, एरूमनाफन तथा स्ट्रैवो एव एरियन के विवरणो मे उस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इनके अनुसार फारस के अखामनी राजाओं ने सर्वप्रथम भारतीय सीमान्त को अपने हाथ में लिया। सीमान्त पर विदेशियो को जमा रखने मे परस्पर-विद्वेष मे उलझे उसके स्थानीय राजाओं का विशेष हाथ था।

सिकन्दर के आक्रमण के समय सीमान्त प्रदेश अनेक राजतन्त्रात्मक अथवा गणतन्त्रात्मक राज्यों मे विभक्त था।

सिकन्दर के आक्रमण के समय वे परस्पर मे युद्धरत थे। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि तक्षशिला - नरेश आम्भी की सहायता मे सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था।

---

१ बौद्धिष्ट इण्डिया पृ० १६४ २७०

२ दे० रइधू कृत भद्रबाहु चाणक्य चन्द्रगुप्त कथानक कड़वक स० ७।

दुर्भाग्य से उस समय उत्तर में ऐसा कोई चतुर एवं राष्ट्रीय-भावना वाला वीर-पराक्रमी सम्राट् नहीं हुआ, जो सीमान्तवर्ती राजाओं को मगध के नन्दराजाओं के समान एक सूत्र में बाँध पाता। वस्तुतः उनकी दुर्बलताओं ने यवनराज सिकन्दर के केवल मनोबल को ही नहीं बढ़ाया अपितु उन्होंने भारतीय सीमा पर विजय तथा मध्यदेश में आगे बढ़ने के लिए हर प्रकार की सहायता कर उसका मार्ग-दर्शन भी किया।

नन्दों का प्रत्यन्त-शत्रु-राजा (पुरु या पर्वतक?) सिकन्दर से पराजित भले ही हो गया हो, किन्तु उसने अपनी सुसंगठित सेना एवं अपनी तेजस्विता से सिकन्दर तथा उसकी सेना को आतंकित कर दिया और भारतीय सीमाओं से मुँह फेरकर उसे पीछे लौटने को बाध्य कर दिया।

सिकन्दर ने आक्रमण कर भारत की हानि भले की हो किन्तु उसका एक सबसे बड़ा लाभ यह मिला कि प्रत्यन्त राजाओं ने परस्पर में सुसंठित रहने का अनुभव किया। चन्द्रगुप्त ने भी उसका लाभ उठाया और उसने भारत में राजनैतिक एकता स्थापित करने की प्रतिज्ञा की। चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) के व्यक्तित्व की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि राजनैतिक विखराव के विद्वेषपूर्ण विषम वातावरण में भी उसने मगध के नन्दराजा के एक सूत्रबद्ध सुदृढ़ साम्राज्य को भी उखाड़ फेंकने की योजना बनाई और उसमें वह सफल भी हो गया।

महाकवि रइधू की प्रस्तुत कृति में जो यह चर्चा आती है कि प्रत्यन्तवासी शत्रु राजा ने जब मगध को घेर लिया, तब नन्द ने अपने एक विश्वस्त मन्त्री की सलाह से उसे पर्याप्त सम्पत्ति प्रदान कर शान्त किया और वह शत्रु-राजा सन्तुष्ट होकर वापस लौट गया।[१] प्रतीत होता है कि उक्त प्रत्यन्त शत्रु राजा (सम्भवतः पुरु या पर्वतक?), को जब यह आशंका हुई कि यवनराज सिकन्दर पूरी शक्ति के साथ भारत पर आक्रमण करने वाला है, तब उसने उसके प्रतिरोध के लिए ही धन-संचय की उक्त व्यवस्था की होगी। उसी कारण उसने नन्द नरेश को आक्रमण का आतंक दिखाकर उससे सम्पत्ति वसूल की होगी तथा एक सुदृढ़ सैन्य-संगठन कर सिकन्दर से लोहा लिया होगा। वस्तुतः उक्त जैन-सन्दर्भ के आलोक मे भी राजा पुरु या पर्वतक सम्बन्धी घटनाओं पर पुनर्विचार किये जाने की आवश्यकता है।

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत कृति के सम्पादन एव अनुवाद की मूल प्रेरणा के लिए मैं सर्वप्रथम पूज्य पण्डित फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। उनके स्नेहिल आदेशों का ही प्रतिफल है कि यह कृति प्रेस में जा सकी। परमपूज्य मुनिश्री एलाचार्य

विद्यानन्द जी महाराज के प्रति नतमस्तक हूँ, जिन्होंने इसके लिए आद्यमिताक्षर के रूप में अपने आशीर्वाद से मुझे कृतार्थ किया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० डॉ. - उपेन्द्र ठाकुर, विभागाध्यक्ष-प्राचीन भारतीय एवं एशियाई इतिहास एवं संस्कृति, मगधविश्वविद्यालय बोधगया ने अपना विद्वतापूर्ण Foreword लिखकर इस ग्रन्थ के महत्त्व को बढ़ाने की कृपा की, उसके लिए मैं उनका चिरऋणी रहूँगा। श्रद्धेय गुरुवर पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने मेरी प्रस्तावना का अध्ययन कर अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये, अतः उनके स्नेह के प्रति भी कृतज्ञ हूँ। प्रो० डॉ० दिनेन्द्रचन्द्र जी जैन, रीडर-वाणिज्य विभाग, ह० दा० जैन कालेज आरा के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरी साहित्यसाधना में आने वाले गतिरोधों से मुझे मुक्त रखने का प्रयत्न किया। अपनी धर्मपत्नी प्रो०डॉ० विद्यावती जैन को धन्यवाद देना तो अपने को ही धन्यवाद देने के समान होगा। प्रस्तुत कृति की पाण्डुलिपि एवं शब्दानुक्रमणी तैयार करने में उसका बड़ा भारी योगदान रहा। उन अनेक लेखकों एवं सम्पादकों के प्रति भी मै आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी रचनाओं के अध्ययन से सुषुप्तावस्था में पड़ी प्रस्तुत ग्रन्थ-सम्पादन सम्बन्धी अपनी अज्ञात-भावना को मैं भी मूर्त रूप प्रदान कर सका। सन्मति मुद्रणालय के व्यवस्थापकों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इसके मुद्रण में हर प्रकार से तत्परता दिखलाई। सावधानी रखने पर भी इस ग्रन्थ में अनेक त्रुटियों का रह जाना सम्भव है, उनके लिए कृपालु पाठकों से क्षमायाचना कर विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे उनकी सूचना मुझे प्रेषित करने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उनका सदुपयोग कर सकूँ।

महाजन टोली नं० २
आरा (बिहार)
श्रुतपचमी
२७-५-१९८२(गुरुवार)

विदुषामनुचरः
राजाराम जैन

♣

महाकवि रइधूकृत

भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक एवं

राजा कल्कि वर्णन

♣

(१)

Tradition of Srutakevalins Description of Childpaly of Bhadrabāhu, born in Brahmin family of Kautukapura.

पुणु पंच मुणीसर संजायंगधर अट्ठंग जि णिमित्तकुसला।
जो भद्दबाहुमुणि पच्छिलु बहुगुणि तासु जि कह पयडमि विमला ।।छ।।

इह अज्जखेत्ति कय पुण्णसत्ति।
कउतुकपुरम्मि सुरमणहरम्मि
5 पउमरहु राउ वड्डिय-पयाउ।
पोमसिरि भज्ज तहु रूवसज्ज।
तहु पुण पुरोहु पायडिय-बोहु।
ससिसम्मु णामु पायडिय-कामु।
सोमसिरि णारि तहु रूवसारि।
10 तहि उयरि जाउ णंदणु अपाउ।
जम्मण-दिणम्मि सोहिवि खणम्मि
विप्पिं पउत्तु भो जण णिरुत्तु।
इहु मज्झु पुत्तु गुणसेणिजुत्तु।
जिण-सासणस्स दय-पावणस्स।
15 उद्धरणसीलु होही सलीलु।
णउ चलइ एहु णियमणि मुणेहु।
इम भणिवि तेण पुणु गउरवेण।
किउ णामु तासु डिंभहु जिआसु।
सिरिभद्दबाहु सुरकरि वि बाहु।
20 वड्ढहि अतंदु णं गयणि चंदु।
रिसिवर पमाणु हूवउ वमाणु।

घत्ता--

एक्कहिं दिणि पुर-डिंभहिं जिउ गोउरवहि जाइवि सुमइ ।
वट्टहें उवरि वट्टउ ठवइ जाम सइच्छइँ सो रमइ।।१।।

[१]

श्रुतकेवलि-परम्परा। कौतुकपुर के एक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न बालक—भद्रबाहु की बाल -लीलाओं का वर्णन

घत्ता-- [भगवान् महावीर स्वामी के परिनिर्वाण के पश्चात् ६२ वर्षों में श्री गौतम स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी और श्री जम्बूस्वामी ये तीन केवली हुए।] तत्पश्चात् [१०० वर्षों में] अंगधारी पाँच श्रुतकेवली मुनीश्वर हुए, जो कि अष्टांग-निमित्तज्ञान में कुशल थे। इन पाँचों मुनियों में से पाछिले (अन्तिम) बहुगुणी भद्रबाहु मुनि हुए। मैं [उनके चरणों में प्रणाम कर] उनकी विमल कथा प्रकट करता हूँ।

इसी आर्य क्षेत्र में जहाँ कि पुण्यवान् जीव रहते हैं, उसमें देवों के मन का हरण करने वाले (स्वर्ग से भी सुन्दर) कौतुकपुर नामका नगर है, जिसमें प्रवर्द्धित प्रताप वाला पद्मरथ नामका राजा राज्य करता था। उसकी अति-रूपवती पद्मश्री नामकी भार्या थी। उस राजा का एक पुरोहित था, जो विशेष प्रसिद्ध ज्ञानी था और जिसका नाम शशिसौम्य (सोमशर्मा) था, जिसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं। उसकी रूपवती नारियों में प्रधान सोमश्री नामकी पत्नी थी। उसके उदर से अपाप (पुण्यशाली) एक नन्दन (पुत्र) का जन्म हुआ। जन्मदिन में लग्न शोधकर विप्र ने कहा कि यह भव्यजनों से निरुक्त (स्तुत्य) मेरा पुत्र गुणश्रेणि (समूह) से युक्त, पवित्र दया है जिसमें, ऐसे जिनशासन का उद्धारक स्वभावी एवं सलील (प्रसन्नचित) होगा तथा [अपने धर्म से] चलायमान नहीं होनेवाला होगा, ऐसा अपने मन में समझो। फिर बड़े गौरव से 'जिताश ' (आशा--इच्छा, या दिशाओं को जीतने वाला) ऐसा कहकर सुरकरि (ऐरावत–हाथी) की सूँड़ के समान दीर्घ बाहुवाले उस डिंभ (पुत्र) का नाम श्रीभद्रबाहु रखा। द्वितीया का चन्द्र जैसे गगन में बढ़ता है, उसीके समान वह अतन्द्र (प्रमादरहित) भी बढ़ने लगा, और ऋषिवरों के समान प्रमाण (मान्य) हुआ।

घत्ता-- एक दिन वह सुमति नगर के बालकों सहित गोपुर के बाहर जाकर गोल पत्थर (बंटे) पर गोल पत्थर (बंटा) रखने लगा। जैसी उसकी इच्छा थी वैसी ही वह क्रीड़ा करने लगा॥१॥

♣

[२]

Coming of Āchārya Govardhana at Kautukapura with his Sādhu-samgha and his conversation with young Bhadrabāhu.

तं गोवद्धणु णामें मुणिंदु महि विहरंतउ तवसा अणिंदु।
बारह-सहसेहिँ रिसीहिँ जुत्तु तत्थ जि पएसि मुणिणाह पत्तु।
अट्ठंगणिमित्त परायणेण सो बालु णिइवि मुणिणा जि तेण।
जाणिउ सुयकेवलि पच्छिमिल्लु इहु डिंभु हवेसइ णिरु गुरु- गुणिल्लु।

5 एत्तहिँ ते सिसु सयल जि अहयाण मुणिसंघु पिच्छि सयल जि पलाणु।
एक्कु जि परिथक्कउ भद्दबाहु जासि जि होसइ पुणु भावि लाहु।
रिसि-पय धाविवि पुणु णविय तेण मुणिणा सो पुच्छिउ राइएण।
कहु णंदणु तुहु महु भणहि आसु तिं भणिउ सोमसम्महु दियासु।
हउँ पुत्तु जि णामें भद्दबाहु तक्खणि पुणु भासइ तासु साहु।

10 तुहुँ मज्झु समीवि पढेसि बाल किं णउ अज्झायमि तउ गुणाल।

घत्ता -

सो जंपइ सामिय संपइ करि पसाउ णिरु पढमि हउँ।
तं सिसु गुण-भरियउ तिं करि धरियउ दियवर-घरि संपत्तु तउ।।२।।

♣

[2]

आचार्य गोवर्धन का अपने साधु-संघ सहित कोटुकपुर में आगमन एवं बालक भद्रबाहु से उनका वार्तालाप

उसी समय तप करने के कारण अनिन्द्य (प्रशंसनीय), पृथ्वी पर विहार करते हुए १२०००(बारह हजार) मुनिराजों के साथ मुनिनाथ (आचार्य) गोवर्धन नामके मुनीन्द्र उसी स्थान पर आ पहुँचे। अष्टांगनिमित्तज्ञान के परगामी उन मुनीन्द्र गोवर्धन ने उस बालक को देखकर यह जान लिया कि महान् गुणी यह बालक निश्चय ही पाछला (अन्तिम) श्रुतकेवली होगा।

और इधर मुनिसंघ को देखते ही वे सभी शिशु हतज्ञान (–अथवा हतप्रभ) होकर पलायन कर गये। केवल बालक भद्रबाहु ही अकेला वहाँ खड़ा रहा, जिसे कि फिर भविष्य में लाभ होने वाला होगा।

उस बालक ने दौड़कर ऋषि के चरणों में नमन किया। मुनिराज ने अनुरागपूर्वक उस बालक से पूछा– "हे नन्दन, हमें शीघ्र ही बता कि तू किसका नन्दन है?" तब उस बालक ने कहा - "मैं सोमशर्मा द्विज का पुत्र हूँ और मेरा नाम भद्रबाहु है।" यह सुनकर आचार्य गोवर्धन ने तत्काल ही उससे पुनः पूछा– "हे गुणालय बालक, क्या तू मेरे समीप नहीं पढ़ेगा ? मैं तुझे पढ़ाऊँगा।"

घत्ता— उस बालक भद्रबाहु ने स्वामी (मुनिराज) से कहा–"सम्प्रति मेरे ऊपर प्रसाद (कृपा) कीजिए, जिससे कि मैं पढ़ जाऊँ।" उन मुनिराज ने गुण से भरे उस शिशु का हाथ पकड़ लिया और उसके साथ वे द्विजवर (सोमशर्मा) के घर जा पहुँचे।।२।।

♣

[3]

With permisson of his father young Bhadrabahu leaves with Āchārya Govardhana for Studies.

अच्छइ णियघरि पोहिउ जेत्तहिं सहुँ बालें मुणिवरु गउ तेत्तहिं।
बंभणेण मुणि पणविवि पुच्छिउ किं कारणि आउसि अदुच्छिउ।
सें जंपइ जइ भणहि ता दियवर तुव णंदणु हुउ पढवमि हउँ पर।
ता भूदेउ भणइ मइँ मुणियउ एयहु जम्मणु दिणु संगणियउ।
5 जिणु सासणु उद्धरणु करेसइ तं णिमित्तु इहु जाउ स भासइ।
लेहु समप्पिहु तुम्हहँ एसो भवियव्वु जि अम्हहँ पुणु एसो।
तहिं अवसरि खणि पयलिय णयणिए आहासिज्जए तासु जि जणणिए।
सामिय एक्क बार पुत्तहुँ मुहु दंसाविज्जइ महु पयडिय सुहु।
पच्छइ जं भावइ तं किज्जहु एहु ससाउ जि अम्हहँ दिज्जहु।
10 तं जि वयणु रिसिणा पडिवण्णउ पुणु डिंमहु लइ गयउ पसण्णउ।
आहारहु विहि सावय-गेहहिं काराविवि तहु पयणिय गेहहिं।
सत्थत्थइँ मुणिणा णिरु सव्वइँ तासु पढावियाइँ तहिं भव्वइँ।
छद्दंसणहु भेय परियाणिय भव्वच्छइँ णिय चित्ति पमाणिय।

घत्ता—

15 तिं गुरु पयवंदिवि मणि आणंदिवि तउ मग्गिउ आवइ हरणु।
ता मुणिणा उत्तउ वच्छ णिरुत्तउ पाढयगुणु चरिया चरणु।।३।।

♣

[3]

अपने पिता की अनुमति लेकर बालक भद्रबाहु का आचार्य गोवर्धन के साथ अध्ययनार्थ प्रस्थान

अपने घर में वह द्विज जहाँ बैठा था, बालक सहित वे मुनिराज वहीं चले गये। ब्राह्मण ने उन पवित्र मुनिराज को प्रणाम कर पूछा-' "इस (तुच्छ) द्विज के घर आने का क्या प्रयोजन है?" तब उन यतिराज ने कहा। -"हे द्विजवर, यदि तुम कहो तो मैं तुम्हारे नन्दन (पुत्र) को परम विद्या पढ़ाऊँ?"

तब वह भूदेव (सोमशर्मा-ब्राह्मण) मुनियों से बोला - " इस (भद्रबाहु) के जन्मदिन ही मैंने सम्यक् गणित लगा लिया था और अपने मन में सोच लिया था कि वह जिनशासन का उद्धार करेगा। उसी निमित्त से यह उत्पन्न ही हुआ है।" वह (पुनः) बोला– "लीजिए, यह बालक तुम्हें समर्पित किया। हमारा तो भवितव्य ही ऐसा है।"

उसी अवसर पर उसकी माता ने आँखों से आँसुओं के पनाले बहाते हुए कहा -- "हे स्वामिन्, एक बार मेरे पुत्र का सुख प्रकट करने वाला मुख मुझे दिखा दीजिएगा। पीछे जो भाये सो कीजिएगा। यही एक वचन हमें दीजिए। "तब ऋषि ने वह वचन स्वीकार कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक वे मुनिराज बालक को ले गये। उन मुनिराज ने स्नेह प्रकट करते हुए उस बालक को आहार की विधि का ज्ञान श्रावकों के घर कराया। उस बालक को (उन) ज्ञानी मुनिराज ने समस्त भव्य शास्त्रों के अर्थ भव्य रीति से पढ़ाये। छह दर्शनों के भेद जानकर उस भव्य वत्स ने भी अपने चित्त में प्रमाण (धारण) कर लिया।

घत्ता-– उस बालक ने गुरु के चरणों की वन्दना कर तथा मन में आनन्दित होकर आपत्ति (दुःख) को हरने वाला तप माँगा। तब मुनिराज ने कहा- "हे वत्स, तुझे गुणस्थान, व्रत (चर्या) एवं चारित्रादि (आचरण) पढ़ा दिया है। अतः अब " --॥३॥

♣

[४]

After distinguishing himself in various Knowledges (Jnana).
Bhadrabahu undertook severe penance (Tapa) and
achieved the rank of Srutakevalin.

एक्क वार णियमंदिरि जाइवि जणणी-जणणहुँ मुहुँ दंसाविवि।
पायड करिवि सविज्ञा मोएँ पुणु आविवि तुहुँ धरियहिँ वेएँ।
तं णिसुणेप्पिणु भद्दकुमारो णिय तातहु घरि गयउ सुसारो।
पियर जणहुँ बहु विणउ जि दंसिउ पुणु-पुणु णिय गुरु तत्थ पसंसिउ।
5 अण्णहिँ दिणि णिवमंदिरी बालें पत्तालंवणु करिवि गुणालें।
विज्ञावाएँ सयल वि जित्तिय वित्थारिय णियसत्ति पवित्तिय।
अप्पाणहुँ भूयलि किउ पायडु पुणु विण्णि विणउ चित्ति महाभडु।
जणणी- जणणहु खमि वि खमाविविअयरेँ सुगुरु पासु पुणु आविवि।
धरिय महव्वयाइँ दिढचित्तेँ भद्दबाहु णामेण विरत्तेँ।
10 सुयकेवलि पायडु संजायउ आयम-सत्थ-अत्थ विक्कखायउ।

· घत्ता -

गोवद्धणु रिसिवरु सण्णासेँ वरु मरिवि गयउ सग्गहरि पुणु।
सिरिभद्दबाहु-मुणि विहरंतउ जणि णिवसइ सासिय सवणगुणु।।४।।

♣

(४)

ज्ञान-विज्ञान में निष्णात होकर भद्रबाहु ने घोर तपश्चरण किया तथा श्रुतकेवलि-पद प्राप्त किया

"एक बार अपने घर जाकर अपने माता-पिता को मुख दिखाकर, हे सविध, आमोद-प्रमोद को प्रकाशित कर, फिर तुम घर से शीघ्र ही लौट आना।" (मुनिराज के ये) वचन सुनकर वह सुसार (श्रेष्ठ) भद्रबाहु कुमार तात (माता - पिता) के घर गया। पितृजनों के प्रति बहुत विनय प्रदर्शित की और उनसे अपने गुरु की बार-बार प्रशंसा की।

अन्य किसी एक दिन उस गुणालय बालक ने राज-सभा में पात्रों का आलम्बन (आह्वान) किया और उन सभी (पात्रों) को अपनी शक्ति (ज्ञानाभ्यास) के वैभव को फैलाकर विद्या-विवाद में जीत लिया तथा भूतल पर अपनी कीर्ति को प्रकाशित किया। पुनः चित्त में महाभट (धीर-वीर) वह कुमार माता-पिता की विनय कर तथा उन्हें क्षमा कर एवं क्षमा कराकर अचिर् (जल्दी ही) फिर सुगुरु (अपने स्वामी मुनि) के पास आ गया। दृढ़ चित्त वाले उस भद्रबाहु नाम वाले कुमार ने विरक्त होकर महाव्रतों को धारण कर लिया और आगम, शास्त्रों के अर्थ में विख्यात वह श्रुत-केवलि के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

घत्ता - ऋषिवर गोवर्धन ने श्रेष्ठ संन्यास-मरण कर स्वर्गगृह (धाम) पाया। श्रीभद्रबाहु मुनि भी जनपदों में विहार करते हुए रहने लगे ॥४॥

♣

(५)

Description of King Nanda of Pātalipura (Modern Patna)
He is worried to learn about surrounding by alien King
(Puru or Parwataka?) of Pratyanta (Frontier) State.
On the direction of his King the Counsellor
(Mantrin or Minister) Sakata manages to
silence the enemy by presenting money
from State-Exchequer.

	एत्तहिँ जायउ अण्ण कहंतरु	पाडलिपुरि पुणु णंदु णरेसरु।
	णामेँ सयडु मंति तहु उत्तउ	जा सुहि गच्छइ कालु णिरुत्तउ।
	ता पच्चंतवासि पुणु अरिणा	तहु पुरु रुद्धउ सुरकरि-करिणा।
	अप्पमाणु बलु पेच्छिवि णंदें	पुच्छिउ सयडु मंति णिव चंदें।
5	दुज्जउ वइरि अत्थि समरंगणि	णियबुद्धिए तहिँ उवसामहिँ खणि।
	जं जं किंपि तुज्झु मणि रुच्चइ	तं तं जाइवि करहि समुच्चिइ।
	ता तिं णिव-भंडारहु दव्वो	अरिहु पयछेप्पिणु णिरु सव्वो।
	उवसामिउ गउ वइरि सदेसहिँ	णंदहु पुणु गयम्मि बहु वासहिँ।
	एक्कहिँ दिणि गउ देखण कोसहु	दंसण मत्तेँ पयणिय रोसंहु।
10	तं रित्तउ पेच्छेप्पिणु राएँ	कोविय पिच्छिउ बद्धकसाएँ।
	कत्थ दव्वु इह किंपि ण पेच्छमि	तो केण वि पउत्तु पयडिय छमि।
	सयडेँ देव सयलु धणु दिण्णउ	तुम्ह कोसु त्ति खलिणोच्छिण्णउ।
	तं णिसुणेवि णरेसिं कीवेँ	संती सकुडंवउ पुणु वेएँ।
	कारागारि घल्लिउ दोहिल्लहिँ	सरवा भरि जलु- सत्तू अल्लहिँ।

घत्ता-

15	अइ थोवइ जलु भोयणु णिइवि	सयडेँ भासिउ परियणइँ।
	जो णंद-कुलक्खउ करणु पडु	सो इहु भक्खहु लेवि लहु ॥५॥

(५)

पाटलिपुर (वर्तमान पटना) के राजा नन्द का वर्णन। प्रत्यन्त देश के राजा (पुरु?) द्वारा की गयी घेराबन्दी से शकट मन्त्री चिन्तित हो जाता है और नन्द के संकेत से वह राज्य- कोष से मुद्राएँ भेंटकर उसे शान्त करता है।

इसी समय अन्य कथान्तर हुआ। पाटलिपुर (पाटलिपुत्र) नगर में नन्द नाम के राजा राज्य करते थे। उनका शकट नाम का एक मन्त्री कहा गया है। उसके कारण (सभी का) समय निरन्तर ही सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था। उसी समय प्रत्यन्तवासी (सीमान्तवर्ती) किसी शत्रु ने ऐरावत हाथी के समान हाथियों द्वारा उस नन्द राजा के नगर को घेर लिया। तब नृपों (रूपी तारा-गणों) में चन्द्रमा के समान राजा नन्द ने शत्रु की अप्रमाण सेना को देखकर अपने शकट मन्त्री से पूछा (कि यह क्या है?) तब मन्त्री ने बताया- "समरांगण में (युद्धभूमि में) दुर्जेय बैरी उपस्थित है।" तब राजा ने उससे कहा- "अपनी बुद्धि से क्षण-भर में उसको शान्त करो। (इस कार्य के निमित्त) जो-जो कुछ भी तुम्हारे मन में रुचिकर लगे, तुम जाकर समुचित रीति से वही-वही करो। " तब उस शकट मन्त्री ने नन्द राजा के भण्डार- कोष का समस्त द्रव्य शत्रु को समर्पित कर उसे शान्त कर दिया। वह (शत्रु) शान्त होकर स्वदेश लौट गया।

अनेक वर्ष व्यतीत हो जाने पर राजा नन्द किसी एक दिन अपना कोषगृह देखने गया और उसे देखते ही वह क्रोधित हो उठा। जब बद्धकषाय राजा ने उस कोषगृह को रिक्त (खाली) देखा तब उसने किसीसे पूछा- "यहाँ का द्रव्य कहाँ चला गया ? यहाँ पर मैं कुछ भी नही देख रहा। " तब किसी ने कहा।- "महाराज क्षमा कीजिए, मैं प्रकट करता हूँ- "हे देव, शकट मन्त्री ने समस्त धन शत्रु को दे दिया है । इसी कारण आपका यह कोषगृह खाली होकर छिन्न (नष्ट) हो गया है।" उस पुरुष का कथन सुनकर वह नरेश क्रोधित हो उठा। उस नन्द ने कुटुम्ब सहित उस मन्त्री शकट को तत्काल कारागृह में डलवा दिया तथा प्रतिदिन दोनों समय मात्र एक सकोरा भर जल और सत्तू देने लगा।

घत्ता - अति थोड़े जल और भोजन को देखकर शकट मन्त्री ने परिजनों से कहा-"जो राजा नन्द का कुलक्षय करने में समर्थ हो, वही इसे लेकर शीघ्र खावे।" ।।५।।

(६)

Unfortunately, King Nanda being enraged with Sakata imprisons him and allows only a bowl of Sattoo (grind gram) and water as food.

ता सयलहिँ जंपिइ तुहुँ जिखमु खय-करणेँ णिव संताण-कमु।
लइ भक्खहिँ पीवहिँ एहु जलु तुहुँ बुद्धि-पसारेँ अइपबलु।
ता तेण जि तं जि पउंजियउ चिरकालु वि थोवउ भुंजियउ।
मुउ सयडु कुडंबउ सो जि जिउ अइ खीण कलेवरु तच्छविउ।
5 पउरेँ कालेँ पुणु सो वि णयरु अरिणा आविवि वेढिय वरु।
णायरजणु हल्लो हल्लियउ ता णंदणरेसेँ बोल्लियउ।
जेणोवायं चिरु उवसमिउ तं करहु अज्ज जाइवि अविउ।
तं णिसुणिवि केणवि भासियउ सयडेँ चिरु मंतु पयासियउ।
सो पइँ सकुडंबउ कारहरि घल्लाविउ छुह-तिस-दुक्खभरि।
10 किं जीवहि सो तहिँ मुउउ बारह-संवच्छर णिरु ठियउ।

घत्ता -

ता केण पउत्तउ देव णिरुत्तउ हत्थु पसारि को वि णरु।
रुद्धहु भग्गे जलु सत्तुव संवलु पडिदिणि गिण्हइ मंदसरु ॥६॥

♣

(६)

दुर्भाग्य से राजा नन्द शकट से रुष्ट होकर उसे सपरिवार कारागार में डाल देता है और प्रतिदिन भोजन के रूप में उसे मात्र एक सकोरे-भर सत्तू एवं जल प्रदान करता है।

शकट का कथन सुनकर सभी परिजनों ने कहा "राजा नन्द की सन्तान के क्रम को क्षय करने में तुम ही क्षम (समर्थ) हो। अतः इसे लो, खाओ और यह जल पियो। बुद्धि के प्रसार (बुद्धि-कौशल) में तो तुम्हीं अति प्रबल हो।" तब उस शकट ने परिजनों के उस अनुरोध को स्वीकार कर लिया और चिरकाल तक (नन्द द्वारा प्रदत्त) किन्तु उस थोड़े से भोजन को खाता रहा। (भूख के कारण) शकट का कुटुम्ब तो मर गया किन्तु तेज छविवाला वह शकट ही जीता रह सका। किन्तु वह भी अत्यन्त क्षीण कलेवरवाला हो गया।

प्रचुर काल बीत जाने पर शत्रु ने पुनः आकर उस श्रेष्ठ पाटलिपुर नगर को घेर लिया। तब नागरिकजनों ने बड़ा हल्ला (शोरगुल) मचाया। तब नन्द नरेश (अपने किसी मन्त्री से) बोला- "हे आर्य, वेगपूर्वक जाओ और किसी भी उपाय से उस शत्रु को सदा-सदा के लिए शान्त कर दो।" राजा का कथन सुनकर किसी ने उत्तर में कहा- "शकट ने तो चिरकालीन मन्त्र (सलाह) को प्रकट कर ही दिया था, किन्तु उसे तो आपने क्षुधा, तृषा आदि दुःखों से व्याप्त कारागृह में कुटुम्ब सहित डाल रखा है। वह वहाँ बारह वर्षों से स्थित है। क्या पता वह वहाँ जी रहा है या मर गया?"

घत्ता- तब किसी से प्रेरित होकर कोई मनुष्य हाथ पसारकर बोला- "हे देव (सुनिए), अवरुद्ध भाग्य वह शकट प्रतिदिन (अल्प-मात्रिक) जल सत्तू रूप सम्बल (भोजन) को ग्रहण करते-करते अत्यन्त मन्द स्वर अर्थात् क्षीण हो गया है।"॥६॥

♣

(७)

On being surrounded again by the alien King of the Pratyanta (Frontier) State, King Nanda silences him with the help of Sakata. King Nanda is very much pleased with Sakata and appoints him Chief of Royal Mess.

तं णिवेण कढाविउ तक्खणि बहु सम्माणिवि पेच्छत्तइँ जणि।
भणइ राउ भो मंति तुरंतैं बइरिहु णिण्णासिउ णिब्भंतैं।
ता सयडैं सबुद्धि कयमोएँ अरियणु उवसामियउ जु वेएँ।
ता तासु जि पउत्तु पुणु राएँ लइ णिय मंतित्तणु मम वाएँ।

5 तेण पउत्तु मंति-पउ दुस्सहु तं णउ गिण्हमि हउँ एवहिँ पहु।
तउ भोयणसाला णिरु पालमि पत्तापत्तहँ भेउ णिहालमि।
णिविण तंपि पउ तासु जि दिण्णउ विप्पहँ भोयणु देइ अछिण्णउ।

घत्ता -

एक्कहिँ दिणि पुर-बाहिरि गएण सयडैं दिट्ठउ को वि णरु।
दब्भहु सूईहि खणंतु णिरु मंतिं पुच्छिउ कोहधरु।।७।।

♣

(७)

प्रत्यन्तवासी शत्रु (राजा पुरु?) के पुनः घेराबन्दी करने पर राजा नन्द शकट की सहायता से उसे पुनः शान्त कर देता है। राजा नन्द प्रसन्न होकर उसे अपने महानस (राजकीय भोजनशाला) का अध्यक्ष नियुक्त करता है।

(उस व्यक्ति का कथन सुनकर) राजा (नन्द) ने तत्काल ही उसे (शकट मन्त्री को कारागार से) निकलवाया। लोगों के मध्य पश्चात्ताप कर उसका अनेक प्रकार से सम्मान किया और कहा- "हे मन्त्रिन्, निर्भ्रान्त होकर तुरन्त ही शत्रु का नाश करो।" तब शकट मन्त्री ने प्रसन्नतापूर्वक तत्काल ही अपनी (कुशल) बुद्धि से उस शत्रु को शान्त कर दिया।

राजा नन्द ने शान्त वाणी में उस शकट से कहा- "मेरे कहने से अपना मन्त्रिपद पुनः सम्हाल लो।" यह सुनकर उस शकट ने कहा- "यह मन्त्रिपद बड़ा कठिन है। अतः अब मैं ऐसे कठिन पद को नही ग्रहण करूँगा। हाँ, आपकी भोजनशाला का पालन (संचालन) करूँगा और पात्र-अपात्र के भेद का निरीक्षण करूँगा। " राजा ने भी उसे वह प्रदान कर दिया और वह शकट भी अच्छिन्न रूप से विप्रों को भोजन कराने लगा।

घत्ता - किसी एक दिन नगर के बाहर गये हुए उस शकट ने किसी ऐसे पुरुष को देखा जो क्रोधित होकर सूचीवाले दर्भों को खोदने मे संलग्न था। शकट मन्त्री ने उससे पूछा-।।७।।

☘

(८)

Sakata and Chanakya get acquainted with each other. On request from Sakata Chanakya takes his meal daily in the Royal Mess on Golden Seat. One day on getting opportunity, Sakata changes his golden seat and places bamboo one instead.

भणु काइँ करहिँ भो मित्त एहु विहलउ दब्भिहिँ तुहुँ काइँ देहु।
चाणक्क णामु [जि] भणइ तासु महु पाउ जि विद्धउ वार आसु।
तिं एयहु जड सइँ खणिवि अज्जु सुक्काविवि पुणु जालेवि सज्जु।
करिऊण छार घल्लमि समुद्दि णीसल्लु होमि ता हउँ रउद्दि।
5 ता सयडेँ चिंतिउ णियमणम्मि इहु विसम कसायउ णिरु जणम्मि।
एण जि होंतेँ महु वइरभाउ परिपुण्णु हवेसइ वर उवाउ।
णंदहु वंसक्खउ करइ एहु इम मुणिवि तेण सहुँ विहिउ णेहु।
पुणु अब्भच्छिउ णिव भोजसालि अग्गासणि तुज्झु जि कणयथालि।
पडिदिणि भुंजाविमि चलहु तत्थ चाणक्क आउ घरि मंति सत्थ।

घत्ता -

10 बहुमाणेँ तहु भुंजंतहु जिं जाइ कालु जा थोवउ।
ता भोयण- ठाणु चालु विहिउ पुच्छइ तहु चाणक्क तउ॥८॥

♣

(८)

शकट एवं ब्राह्मण-चाणक्य का परिचय। शकट के अनुरोध पर चाणक्य प्रतिदिन महानस के स्वर्णासन पर बैठकर भोजन करने लगता है। अवसर पाकर शकट उसका आसन बदलकर वंशासन कर देता है।

- "हे मित्र, कहो तो, यह क्या कर रहे हो। विफल (फलरहित) दर्भों के लिए तुम क्या दे रहे हो?" तब चाणक्य नामवाले उस (अपरिचित) पुरुष ने (शकट को) उत्तर में तत्काल ही कहा- "इन दर्भों ने मेरा कई बार पैर बींध दिया है। इसी कारण जड़सहित इन्हें आज ही खोदकर, सुखाकर, पुनः उन्हें सावधानीपूर्वक जलाकर, उनकी राख बनाकर, उसे रौद्र-समुद्र में फेंक दूँगा, तभी मैं निःशल्य होऊँगा। "

तब शकट ने अपने मन में विचार किया कि यह चाणक्य (निश्चय ही) मनुष्यों में अत्यन्त विषम (तीव्र-प्रचण्ड) कषायवाला है। इसके होते हुए मेरा बैरभाव परिपूर्ण होगा। यह अच्छा उपाय रहेगा। नन्द राजा के वंश का यही व्यक्ति क्षय करेगा। ऐसा जानकर (समझकर) उसने उसके साथ स्नेह किया। फिर नृप की भोजन-शाला में पधारने की प्रार्थना की (और कहा कि) -"मैं सुवर्णथाल में सबसे आगे आसन पर बैठाक र प्रतिदिन भोजन कराऊँगा। आप वहाँ चलिए।" तब चाणक्य शकट मन्त्री के साथ उसके घर आया।

घत्ता - अत्यन्त सम्मानपूर्वक भोजन करते हुए जब उस चाणक्य का कुछ काल व्यतीत हो गया तभी मन्त्री शकट ने उसके भोजन का आसन (क्रम) चलायमान कर दिया (-बदल दिया)। तब चाणक्य ने उससे (इसका कारण) पूछा-॥८॥

♣

(९)

Finding the changed seat, Chānakya is enraged with King Nanda. He along with Chandragupta joins the enemy King (Puru or Parwataka) of Pratyanta and with his help completely annihilates King Nanda and makes Chandragupta the King of Padalipura.

मज्झु जि भोजासणु किं चालियउ केणारण्णि हुवासणु घालियउ
मंति भणिउ णिवहु आएसैं तुम्हासणु अवहरिउ विसेसैं।
ता मज्झासणि तेण णिउत्तउ कइपय वासर वइसिवि भुत्तउ।
पुणु तत्थउ वि चालिउ जामहिँ मणि कुद्धउ चाणक्कउ तामहिँ।
5 पुरवराउ भासंतउ णिग्गिउ महु कु डि जो लग्गइ सो लग्गउ।
णंद-रज्जु तहु देमि अभग्गहु इय भासंतु जाइ णंदिग्गहु।
तं सुणि को वि चंदगुत्ति जि भडु तासु पिट्ठि लग्गउ अरि-खय-पडु।
तिं पच्चंत-वासि-अरिरायहैँ गंपि मिलेप्पिणु भूरि-सहायहैँ।
णंदहु रज्जु समरि उद्दालिवि णिय परिहवपडु सो णिएक्खालिवि।
10 चंदगुत्ति तिं पविहउ राणउ किउ चाणक्कैं तउ जि पहाणउ।
चंदगत्ति रायहु विक्खायहु विंदुसारणंदणु संजायहु।
तहु पुत्तु वि असोउ हुउ पुण्णउ णउलु णामु सुउ तहु उप्पण्णउ।
णिउ असोउ गउ वइरिहु उप्परि पल्लाणेप्पिणु सज्जिवि हरिकरि।
तेण जि सणयरहु लेहु जि पेसिउ सालि- क्खरु-मति देवि अदूसिउ।
15 उवज्झायहु णंदणु पाढिव्वउ अयरैंएहु वयणु महु किव्वउ।
तं जि लेहु वंचिउ विवरेरउ णयण-जुयलु हरियउ सुय केरउ।

घत्ता -

अरि जित्तिवि जावहु आउ घरि पुत्तु णिच्छिविउ गयणयणो।
बहु सोउ पउंजिवि तेण तहिँ विहियउ सुयहु पुणु परिणयणो ॥९॥

(९)

परिवर्तित आसन देखकर चाणक्य राजा नन्द से क्रुद्ध होकर चन्द्रगुप्त के साथ प्रत्यन्तवासी शत्रु राजा (पुरु?) से जा मिलता है और उसकी सहायता से राजा नन्द को समूल नष्ट कर चन्द्रगुप्त को पाटलिपुर का राजा बना देता है। चन्द्रगुप्त की वंश-परम्परा।

-"मेरे भोजन का आसन क्यों चला (बदल) दिया? किसने (स्वर्णासन के स्थान पर) बाँस का यह आसन रख दिया है?" (यह सुनकर) शकट मन्त्री ने कहा कि - "राजा नन्द के विशेष आदेश से ही तुम्हारे आसन को बदल दिया गया है।" शकट ने उसे मध्यवर्ती आसन पर बैठने को कहा। तब चाणक्य ने कुछ दिनों तक उसी पर बैठकर भोजन किया और पुनः जब उस आसन को भी चलायमान कर दिया गया (बदल दिया गया), तब वह चाणक्य अपने मन में अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। वह लोगों के सम्मुख यह कहता हुआ वहाँ से निकला कि -"मेरी कुटी में जो अग्नि सिलग उठी है, उसे हे अभागे नन्द राजा, वह सब मैं तुझे सौंपता हूँ।" इस प्रकार चिल्लाता हुआ वह चाणक्य राजा नन्द के भवन की ओर दौड़ा। उसके वचनों को सुनकर शत्रुजनों को नष्ट करने नें पटु चन्द्रगुप्त नामक कोई वीर योद्धा उस चाणक्य के पीछे लग गया। (पुनः) वे दोनों (चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त) मिलकर प्रचुर सहायता माँगने हेतु सीमान्त निवासी अरिराज (पर्वत या पुरु ?) के समीप गये। अपने अपमान का बदला लेने में चतुर उस चाणक्य ने खून को खौलाकर (अर्थात् प्रचण्ड क्रोध से भरकर) समरभूमि में राजा नन्द को उखाड़कर (पराजित कर) चन्द्रगुप्त को ही पाटलिपुर का राजा बना दिया। चन्द्रगुप्त ने भी उस चाणक्य को अपना प्रधान (-मन्त्री या सेनापति) बना लिया।

उस सुप्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्त का बिन्दुसार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। पुनः उस बिन्दुसार का भी अशोक नामक पुत्र हुआ। पुनः उस अशोक का भी विनयशील नकुल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। नृप अशोक अपने ऐरावत हाथी के समान हाथी को सजाकर तथा पल्लाण (हौदा) से अन्वित कर शत्रु के ऊपर आक्रमण करने के लिए चला गया। उसने (अर्थात् राजा अशोक ने समर-भूमि से) अपने नगर में एक लेख (-पत्र) भेजा (और उसमें लिखा) कि- "पुत्र को अक्षर सीखने हेतु निर्दोष मति देकर शाला में भेजो (उसे उपाध्याय से पढ़वाओ)। मेरे इस आदेश का शीघ्र ही पालन किया जाय।" अशोक के उस लेख (-पत्र) को विपरीत (उल्टा) बाँच (पढ़) लिया गया और उस पुत्र (-नकुल) के दोनों नेत्र फोड़ दिये गये।

घत्ता- शत्रु को जीतकर जब राजा अशोक घर वापिस लौटा और अपने पुत्र (नकुल) को गतनयन (अन्धा) एवं उदास देखा तो उसने बड़ा शोक प्रकट किया और उसने उसका परिणय-संस्कार करा दिया ॥९॥

(१०)

Sixteen dreams of Chandagupta, the son of Nakula and grandson of king Asoka.

णामैं चंदगुत्ति तहु णंदणु संजायउ सज्जणु आणंदणु ।
पोढत्तणु सो रज्जि परिट्ठिउ णिव-पउ पालणि सो उक्कंठिउ ।
जिणधर्म्मैं मइ तित्तउ अच्छइ मुणिणाहहैं णिरु दाणु पडिच्छइ ।
अण्णहिं दिणि वि रइणि सुपसुत्तइँ सिविणइँ दिट्ठइँ सोलहमत्तइँ ।
5 दिट्ठउ अच्छंगउ-दिवसेसरु साहाभंगु कप्परुक्खहु परु ।
इंदविमाणु वि वाहुडि जंतउ अहिबारहफणि फुफ्फूवंतउ ।
ससिमंडलहु भेउ तहु दिट्ठउ हत्थि किण्ह जुज्झंत अणिट्ठउ ।
खज्जोउ वि दिट्ठउ पहवंतउ मज्झि सुक्क सरवरु वि महंतउ ।
धूमहु पूरैं गयणु विछिण्णउ वणयरगणु विट्ठरहिं णिसण्णउ ।
10 कणय- थालि पायस भुंजंता साणु णियच्छिय तेय-फुरंता ।
करिवर-खंधारूढा वाणर दिट्ठ कियारमज्झि कमलइँ वर ।
मज्जायं चत्तहु पुणु सायरु बाल-वसह धुर जोत्तिय रहवरु ।
तरुण-वसह आरूढा खत्तिय दिट्ठा तेण अतुलबल सत्तिय ।

घत्ता-

15 इय सिविणय पिच्छिवि गोसि णिरु जामच्छइ चिंताउरु।
तातम्मि णयरि संपत्तु वणि भद्दबाहु रिसि परमगुरु।।१०।।

♣

(१०)

नकुल (अशोक का पुत्र) के पुत्र चन्द्रगुप्त (सम्प्रति?) द्वारा १६ स्वप्न-दर्शन ।

उस नकुल का सज्जनों को आनन्दित करनेवाला चन्द्रगुप्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। नृप-पद के पालन करने में उत्कंठित वह चन्द्रगुप्त अपनी प्रौढ़ावस्था में राजगद्दी पर बैठा। उसकी बुद्धि जैनधर्म के प्रति तृषित (पिपासु) रहती थी। वह निरन्तर ही मुनिनाथों के लिए दान (आहार-दान) दिया करता था।

अन्य किसी एक दिन उस राजा चन्द्रगुप्त ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में सोते हुए सोलह स्वप्न देखे। उसने पहले स्वप्न में अस्तंगत सूर्य को देखा। दूसरे स्वप्न में कल्पवृक्ष की टूटी हुई शाखा देखी। तीसरे स्वप्न में उल्टा जाता हुआ इन्द्रविमान देखा। चौथे स्वप्न में फुफकारते हुए बारह फणवाले सर्प को देखा। पाँचवें स्वप्न में शशिमण्डल का भेद (टुकड़ा) देखा। छठवें स्वप्न में जूझते हुए काले अनिष्ट हाथी देखे। सातवें स्वप्न में चमकते हुए खद्योतों को देखा। आठवें स्वप्न में मध्य में सूखा महान् सरोवर देखा। नौवें स्वप्न में गगन में विस्तीर्ण धूम के पूर को देखा। दसवें स्वप्न में सिंहासन पर बैठे हुए वनचर समूह को देखा। ग्यारहवें स्वप्न में तीव्रतापूर्वक घुरघुराते (गुर्राते) हुए कुत्तों को सोने की थाली में खीर खाते हुए देखा। बारहवें स्वप्न में करिवर के कन्धे पर आरूढ़ वानर को देखा। तेरहवें स्वप्न में कचरा के मध्य में उत्पन्न उत्तम कमलों को देखा। चौदहवें स्वप्न में मर्यादा का उल्लंघन करते हुए समुद्र को देखा। पन्द्रहवें स्वप्न में बाल-वृषभों को उत्तम रथ की धुरी में जोता हुआ देखा एवं सोलहवें स्वप्न में उस चन्द्रगुप्त ने तरुण बैल पर आरूढ़ अतुलशक्तिवाले एक क्षत्रिय को देखा।

घत्ता - इस प्रकार स्वप्नों को देखकर वह राजा चन्द्रगुप्त जब प्रभातकाल में चिन्तातुर होकर बैठा था कि तभी उस नगरी (पाटलिपुर) के समीपवर्ती वन (उद्यान) में परमगुरु श्री भद्रबाहु मुनि पधारे।।१०।।

♣

(११)

Interpretation of sixteen dreams by Acharya Bhadrabahu.

चंदगुत्तिराएँ सुयकेवलि जाइ वणंतें पुच्छिउ गयमलि ।
सिविणय-फलु महु अक्खहिसामिय अट्ठणिमित्तणाणपहगामिय ।
तं णिसुणेवि महामुणि भासइ भावकालपरिणइ सुपयासइ ।
दिणयरु अत्थवणें पुणु केवलु णाणत्थवणु हवेसइ गयमलु ।
5 अवहि-मणह-पज्जय खउ होसइ रवि- अत्थवणहुँ एहु फलु पोसइ ।
कप्पद्दुम- साहहिं जि भंगे णिववहेसहिं संपय संगे ।
छंडिवि रज्जु ण तउ गिणेसहिं परलच्छीसंगहणु करेसहिं ।
जं वाहुडिउ विमाणु णहंगणि तं णउ एसहिं इह चारण-मुणि ।
देवाहँ वि आगमणु णिसिद्धउ पंचमकालि णरेस पसिद्धउ ।
10 अहि-बारह-फण-जुउ जं दिट्ठउ दोदह-वरिस-दुकाल जि सिट्ठउ ।
चंदहु मंडल भेएँ णिव मुणि जिणदंसणहो भेय होसहि जणि ।

घत्ता-

जं जुज्झंता पइँ किणहकरि दिट्ठ तं घणमाला इह।
विरला वरिसेसइ धरवलए णिव णेसइ वज्जग्गि-सिहा।।११।।

♣

(११)

आचार्य भद्रबाहु द्वारा स्वप्न-फल-कथन

राजा चन्द्रगुप्त ने उद्यान में कर्ममल (दोष) रहित भद्रबाहु श्रुतकेवलि के निकट जाकर पूछा- "अष्ट निमित्त-ज्ञान के पारगामी हे स्वामिन्, स्वप्नों का फल मुझे कहिए। " उसके प्रश्न को सुनकर वे महामुनि भद्रबाहु भावों एवं काल की परिणति को प्रकाशित करते हुए बोले-

(१) सूर्य के अस्त को देखने से गतमल (कर्मरहित) केवलज्ञान का भी अस्त हो जायगा (अर्थात् अब आगे केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होगा)। अवधिज्ञान एवं मनःपर्ययज्ञान (तथा उनकी ऋद्धियों) का क्षय होगा। रवि अस्तमन रूप प्रथम स्वप्न इसी फल को स्पष्ट करता है।

(२) कल्पवृक्ष की भग्न शाखा के देखने का यह फल है कि आगे के राजा बुरे उद्देश्य से सम्पत्ति का संग्रह करेंगे। राज्य को छोड़कर वे तप को कुछ भी नहीं गिनेंगे और परायी लक्ष्मी के संग्रह (अर्थात् छीना-झपटी) में लगे रहेंगे।

(३) नभरूपी आँगन में उलटे हुए विमान को देखने से हे नरेश! इस प्रसिद्ध पंचम-काल में यहाँ चारणमुनि नहीं आवेंगे। देवों का भी आगमन निषिद्ध रहेगा (अर्थात् स्वर्ग से देव भी नही आवेंगे)।

(४) जो बारह फणवाले सर्प को देखा है, सो वह स्वप्न बारह वर्ष के दुष्काल को कहता (बताता) है। (अर्थात् आगे चलकर मगध में बारह वर्षों का अकाल पड़ेगा)।

(५) हे नृप, चन्द्र-मण्डल में भेद के देखने से लोक में मुनि और जिनदर्शन (मत) का भेद होगा, ऐसा जानो।

घत्ता -(६) हे नृप, आपने जूझते हुए जो काले हाथियों को देखा है, जो घनमाला (मेघ) यहाँ विरल (जहाँ-तहाँ-बहुत कम) बरसेगी तथा वज्राग्नि- (बिजली-शिखा) धरावलय (पृथ्वीमण्डल) को नष्ट करेगी ॥११॥

(१२)

Renunciation by Chandragupta on hearing the meaning of the dreams.

खज्जोएँ पुणु किंचि जि आयमु पयमुह वेसइ पयडिय सुहकमु।
सरु सुक्कउ जं मज्झ पएसहिं धम्मु णासु तं मज्झिम देसहिँ
धूमें दुज्जणयण पुणु घरि-घरि होसहिं दोसहँ गहण कथायरि।
जं सिंहासणि संठिय वणयर तिं होसहिं अकुलीण णरेसर।
5 कुल-विसुद्ध तहँ सेव करेसहिँ ताहँ पसाएँ उयरु भरेसहिं।
जं पायसं भुंजंता कुक्कुड कणयथालि दिट्ठा वणुक्कड।
तिं कुलिंग रायहिं पुज्जेव्वा ताहँ वयण जयणेँ पालेव्वा।
कइ आरूढ दिट्ठ जं हत्थिहिं तिं सेविव्वा हिण महड्ढिहिं।
जं कियार पुंजहि पुणु सररुह तं सपरिग्गाह होसहिं मुणि बुह।
10 जं मज्जाएँ चत्तउ सायरु तं राणा लेसहि पवरु जि करु।
बाल-बसह णिव्वाहिउ रहवरु डिंभ बहेसहिँ संजम-भरु।
तरुण-बलद्दारूढा खत्तिय तिंहोसहिँ कुधम्म अणुरत्तिय।

घत्ता -

इम सुणिवि भावकालहु जि गइ पुणरवि चित्त विरत्ति पइ।
णिय पित्तहुँ देप्पिणु रज्जभरु चंदगुत्ति दिक्खियउ लइ।।१२।।

♣

(१२)

आचार्य भद्रबाहु द्वारा स्वप्नफल-कथन एवं चन्द्रगुप्त को वैराग्य

(७) खद्योतों के देखने का फल यह होगा कि शुभ-कर्म के प्रकट करने-वाले आगम के पदों के मुख में धारण करनेवाले वेषी-साधु बहुत कम होंगे।

(८) सरोवर को मध्य में सूखा देखने का फल यह है कि मध्यदेश में धर्म का नाश होगा।

(९) धूम-दर्शन से दुर्जन-जन घर-घर में दोषों को ग्रहण कराने वाली कथाएँ करनेवाले होंगे।

(१०) सिंहासन पर स्थित वनचरों को देखा-उसका फल यह है कि (भविष्य में) अकुलीन राजा होंगे। विशुद्ध कुलवाले लोग उन नीच, कुलीन-राजाओं की सेवा करेंगे और उन्हीं की कृपा से अपना उदर भरेंगे।

(११) जो बड़े-बड़े जंगली उत्कट कुत्तों को सुवर्ण की थाली में खीर खाते देखा है, इसका फल यह होगा कि राजाओं द्वारा कुलिंगी (साधु) पूजे जावेंगे और लोग उन्हीं के वचनों को यत्नपूर्वक पालेंगे ।

(१२) हाथी पर आरूढ़ जो बन्दर को देखा है, उसका फल यह है कि महाऋध्दिवालों (महा-अर्थ धन और पुरुषार्थवालों) के द्वारा हीन अकुलीन जनों की सेवा की जायेगी।

(१३) पुनः कचरा (कूड़े) में उत्पन्न जो कमल देखे है, उसका फल यह है कि ज्ञानी मुनि परिग्रह सहित होंगे ।

(१४) जो मर्यादा त्यागते हुए सागर को देखा है, इसके फलस्वरूप राणा (शासक) लोग अत्यधिक कर (टैक्स) वसूल करेंगे।

(१५) बालवृषभों से वाहित जो रथ देखा है, सो डिंभ (कुमार) संयम के भार का वहन करेंगे।

(१६) तरुण बैलों पर आरूढ़ क्षत्रियों को देखा, सो क्षत्रिय कुधर्म के अनुरागी बनेंगे।

घत्ता- इस प्रकार स्वप्नों का फल सुनकर तथा काल की गति (भविष्य) पर बार-बार विचार करने से राजा चन्द्रगुप्त के मन में विरक्ति उत्पन्न हो गयी और उसने अपने पुत्र को राज्य का भार देकर दीक्षा ले ली ।।१२।।

(१३)

Chandragupt accepts asceticism by Āchārya Bhadrabahu, Knowing about the comingTwelve- Year-famine, Āchārya Bhadrabahu proceeds towards South India with 12000 saints (Sadhus) including Chandragupta.

भद्दबाहु सुयकेवलिसारहु सिस्सु पजायउ णिज्झियमारहु।
अण्णहिं दिणि रिसि-संघ-वरिट्ठउ भद्दबाहु पुरि चरिय पइट्ठउ।
मग्गे जंतिं तिं डिंभेक्कउ दिट्ठउ रोवंतउ पहि थक्कउ
बा-बा-बा भणेवि जा कंदइ ता णिमित्तु सुयकेवलि विंदइ।
5 भासइ कित्तियाइँ सुपवित्तउ दोदह- दोदह बालिं वुत्तउ
हुयहु अलाहु आउ सुयकेवलि जंपइ संघु णिवेसिवि गयमलि।
दोदह-वरिसहु कालु हवेसइ जणणु पुत्तहु गासु हडेसइ
जो कुवि मुणिवरु इत्थ रहेसइ तहु वउ-तउ संजमु णासेसइ।।
मज्झु णिमित्तु एम आहासइ दक्खिण-दिसि विहरियइ समासइ।
10 ता सावयलोयहिँ तहु वुत्तउ सामिय अम्हहँ गेहि णिरुत्तउ
अत्थि पउर-घय-पय धण-धण्णइँ लवण-तिलहँ कुवि संखा गण्णइँ
बारह-वरिसइँ कित्तियमित्तइँ अम्हइँ तुम्हहँ पय-अणुरत्तइँ
किंपि चिंत मा करहु सचित्तहिँ गमणु म करहु दुकाल-णिमित्तहिँ।
तहँ वि ण भद्दबाहु रिसि थक्कउ जाणंतो वयभंगु गुरुक्कउ।
15 थूलभद्दु-रामिल्लायरियउ थूलायरियउ बि जस विप्फुरियउ।
ए तिण्णि वि णिय-णिय-गण- जुत्तासाव्य-वयणहिँ थक्क णिरुत्ता।

घत्ता -

बारह-सहस-मुणिहिँ सहिउ भद्दबाहुरिसि चल्लियउ।
जंतउ-जंतउ कयवयदिणहिँ अडविहिँ पत्तु गुणल्लियउ।।१३।।

(१३)

चन्द्रगुप्त द्वारा भद्रबाहु से दीक्षा तथा आगामी द्वादशवर्षीय दुष्काल की जानकारी प्राप्त कर भद्रबाहु का चन्द्रगुप्त आदि १२ सहस्र साधुओं के साथ दक्षिण-भारत की ओर विहार।

- और आगे चलकर वह (चन्द्रगुप्त) कामदेव पर विजय प्राप्त कर लेने वाले तथा श्रुतकेवलियों में प्रधान भद्रबाहु का शिष्य बन गया। अन्य किसी एक दिन ऋषियों के संघ में वरिष्ठ (गुरु-) भद्रबाहु ने चर्या-हेतु नगर में प्रवेश किया। मार्ग में जाते हुए उन मुनिराज ने रास्ते में खड़े रोते हुए एक शिशु को देखा। वह शिशु बाबा-बा-बाबा-बा-कह-कहकर रो रहा था। तब निमित्तज्ञान से श्रुत-केवली उन भद्रबाहु ने जान लिया और सुपवित्र उन स्वामी ने कितने ही साधुओं से कहा कि "यह बालक दो दह (१२)दो दह (१२) कह रहा है।" इससे उनकी चर्या में अन्तराय हो गया और गतमल (निर्दोष) वे श्रुतकेवली वापिस आये और संघ को बैठाकर कहने लगे- "दो दह कहने से द्वा दश वर्ष का अकाल होगा, जिसमें (अकाल में) पिता अपने पुत्र का भी ग्रास छीन लेगा। जो कोई भी मुनिवर यहाँ रहेगा उसका व्रत, तप एवं संयम नष्ट हो जायगा, ऐसा मेरा निमित्त ज्ञान कह रहा है। अतः हम सब इकट्ठे होकर दक्षिण-दिशा में विहार करें।" तब श्रावक लोगों ने उनसे कहा- "हे स्वामिन्, हमारे घर में ठहरिए। हमारे यहाँ प्रचुर घी, दूध, धन एवं धान्य है ही, नमक, तेल की संख्या (मात्रा) भी कौन गिने ? हम लोग जब आपके चरणों में अनुरक्त हैं तब बारह वर्ष कितने मात्र हैं? [अर्थात् बारह वर्ष चुटकी बजाते ही निकल जायेंगे।] आप अपने चित्त में किसी प्रकार की चिन्ता मत कीजिए और केवल दुष्काल के निमित्त से ही यहाँ (पाटलिपुर) से गमन मत कीजिए।"

श्रावकों द्वारा बार-बार आग्रह किये जाने पर भी दुष्काल में महाव्रतों के अत्यन्त भंग को जानते हुए ऋषिकल्प भद्रबाहु वहाँ रुके नहीं। किन्तु यश से स्फुरायमान स्थूलभद्राचार्य, रामिल्लाचार्य और स्थूलाचार्य ये तीनों आचार्य अपने-अपने गणों से युक्त (होकर जैसे ही उन भद्रबाहु के साथ चलने को उद्यत हुए कि) श्रावकों के अत्यन्त आग्रह से वे वहीं(पाटलिपुर में) रुक गये।

घत्ता - बारह हजार मुनियों सहित ऋषिकल्प भद्रबाहु दक्षिण की ओर चल दिये। जाते-जाते कतिपय (कितनेक) दिनों में वे गुणाश्रित मुनिराज एक अटवी में जा पहुँचे।।१३।।

(१४)

Knowing about his short life through Akasavani (Devine voice of sky)in a dence-cave of South India, Bhadra-bahu sends the Sadhu-Samgha ahead under the leadership of Acharya Visakhanandin and stays himself with Chandragupta there. Bhadrabahu directs Chandragupta to accept Kāntara-Charya (taking ceremonial food in the forest)

तहिँ सज्झाउ करिवि रिसि संठिउ ता मज्झिम-णिसि सद्द समुट्ठिउ।
तुम्हहँ णिसही इत्थु जि होसइ गयणसद्दु एरिसु तहु घोसइ।
तं णिसुणिवि मुणिणा जि णिमित्तं णिय थोबाउ सुमुणिउ पवित्तं।
सिरिविसाहणंदी मुणिपुंगमु संघभारु करिवि सुय-संगमु।
5 संघु विसज्जिउ किरिव खमावणु चंदगुत्ति तहि ठिउ मुणिपावणु।
बारह-वरिसइँ गुरुपय-सेवमि इहअडवि णियकालु जि खेवमि ।
जो सिस्सु जि गुरुपय णाराहइ सो किं तवरयणें सिउ-साहइ।
इय भणंतु थक्कउ परमत्थें णउगउ ताहँ मुणिंदहँ सत्थें।
भद्दबाहु अणसणु मंडेप्पिणु संठिउ जीवियास-छंडेप्पिणु।
10 चंदगुत्ति उववास करंतउ जा तहिँ ठिउ गुरु-सेव करंतउ।
ता गुरुणा तहिँ तासु जि भासिउ वच्छ णिसुणि जिण-सुत्ति पयासिउ।
मग्गलोउणउ पढम विहिज्जइ णियकम्महु पमाणु जाणिज्जइ।

घत्ता-

गुरुवयण-सुणेप्पियणु पय-पणवेप्पिणु गउ अडविहिँ भिक्खाहिँ मुणि।
ता कुवि पुणु जक्खणि तवहु परिक्खणि आया तत्थ जि पवरगुणि।

(१४)

(१४)

आकाशवाणी द्वारा अपनी आयु अल्प जानकर भद्रबाहु विशाखानन्दी के नेतृत्व में साधुसंघ को चोल-देश की ओर भेज देते हैं। चन्द्रगुप्त गुरुसेवा के निमित्त वहीं रह जाता है। भद्रबाहु उसे कान्तार-चर्या का आदेश देते हैं।

वहाँ ऋषिकल्प भद्रबाहु जब स्वाध्याय करते हुए स्थित थे तभी मध्यरात्रि में एक शब्द उत्पन्न हुआ (अर्थात् एक वाणी सुनाई दी) कि - "तुम्हारी निषिद्धिका (समाधिभूमि) यहाँ ही होगी। आकाशवाणी ने तुम्हारे लिए यही घोषणा की है।"

उस (आकाश) वाणी को सुनकर ऋषिकल्प भद्रबाहु ने अपने निमित्तज्ञान से जान लिया कि "अपने पवित्र मुनिपद की आयु अब थोड़ी ही रह गयी है। "तब उन्होंने श्रुतज्ञानी श्रीविशाखनन्दि-मुनिपुंगव को संघ का आधार (नायक आचार्य)बनाकर सबसे क्षमापण (क्षमाकर) कर संघ को विसर्जित कर दिया (आगे भेज दिया) और पावन महामुनि चन्द्रगुप्त उन्हीं ऋषिकल्प के पास यह सोचते हुए रह गये कि "बारह वर्षों तक गुरुपद (चरणों) की सेवा करता हुआ इसी अटवी में अपने समय को व्यतीत करता रहूँगा। जो शिष्य अपने गुरु के पदों की आराधना नहीं करता, वह तपश्चरण से शिव-साधना क्या करेगा?" उस प्रकार कहते हुए वे चन्द्रगुप्त महामुनि परमार्थ से (निश्चय से) वहीं ठहर गये और उन मुनीन्द्रों के साथ उन्होंने आगे का विहार नहीं किया।

ऋषि भद्रबाहु जीवित रहने कीआशा छोड़कर अनशन माँडकर (अर्थात् चतुर्विध आहार का सर्वथा आजीवन त्यागकर) समाधिस्थ हो गये और चन्द्रगुप्त भी उपवास करते हुए तथा गुरु की सेवा करते हुए वही पर स्थित रहे। तभी गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी ने वहाँ उन चन्द्रगुप्त मुनि से कहा- "हे वत्स सुनो, जिनसूत्र में ऐसा प्रकाशित किया गया है (स्पष्ट किया गया है) कि साधु को अपनी कान्तार (वन) -भिक्षा के लिए जाना चाहिए और वहाँ अलाभ होने पर प्रोषध (उपवास) करना चाहिए। मार्ग का आलोचन प्रथम विधेय है। वह अपने (अन्तराय) कर्म के प्रमाण जानना चाहिए।"

घत्ता - गुरु के वचनों को सुनकर तथा उनके चरणों में प्रणामकर मुनिराज चन्द्रगुप्त भिक्षा के लिये अटवी में गये। उसी समय वहाँ एक प्रवरगुणी यक्षिणी उस मुनिराज के तप की (ब्रह्मचर्य की) परीक्षा के लिए वहाँ आयी ॥१४॥

(१५)

Muni Chandragupta has to face Antarayas Chinderances in taking food as per principle on account of available food articles which were against canons. However, form the 4th day he starts getting prescribed pure food.

कंकण-कडय-विहूसिय णियकरु दक्खालइ छहरस चट्टइ धरु।
मुणिवरु तं पिच्छिवि चिंतइ मणि एहु अजुत्तुण गिण्हइ बहुगुणि।
गउ बाहुडि अलाहु मुणेप्पिणु गुरुहुँ तं जि अक्खिउ पणवेप्पिणु।
पच्चक्खाणु लेवि सो संठिउ अण्णहिँ दिणि वण-भमणुक्कंठउ।
5 अवरहिँ दिसि संपत्तउ जामहिँ सिध्द रसोइ दिट्ठ तिं तामहिँ
णाणाविह रसवत्तिहिँ जुत्ती विणु जुवतीए तेण खणि चिंती।
हुय अलाहि गुरु आसमि आयउ तं असेसु रिसि पुरु अभिवायउ
मुणिणा भव्वु-भव्वु तहु वुत्तउ ठिउ उववासिं पुणु जि पवित्तउँ
अवरदिसहिँ गउ अण्णहिँ वासरि एक्कलिय तिय दिट्ठि वणंतरि।
10 करिकर वद्धंजलि पुणु धरेप्पिणु पडिगाहइ ठा-ठाहू भणेप्पिणु।
तं पि अजुत्तु मुणिवि णिरु चत्तउ जाइवि तिं णियगु रुहुँ पउत्तहु।
रिसि जंपइ तव पुणि संजाया पइँ अभंग रक्खिय वयछाया।
तुरियइँ दियसि अवरदिसि पत्तउ भिक्खाकारणि णिम्मल-चित्तउ।
णयरु एक्कु तिं तत्थ जि दिट्ठउ गोउर-पायोरेहिं मणिट्ठिउ।
15 जिणहर-चउट्टेहिं रवण्णउ तत्थ पइट्ठउ सवणु रवण्णउ।
सावय दारापेहण थक्कें चंदगुत्तिं पडिगाहिउ एक्कें।

घत्ता -

विहिपुव्वें मुणिवरु सुरकरिकरवरु चरिय करिवि संपत्तु लहु।
णियगुरुहुँ जि भासिउ सयल पयासिउ णयरु इक्कु इत्थ जि पहु॥१५॥

[१५]

कान्तार-चर्या में सिध्दान्त विरुध्द साधन-सामग्री देखकर चन्द्रगुप्त मुनि को लगातार अन्तराय होता रहता है किन्तु चौथे दिन उन्हें निर्दोष आहार प्राप्त हो जाता है ।

उस यक्षिणी ने कंकण एवं कटक से विभूषित अपने हाथों में धारण किये हुए छहरस सहित चार प्रकार के आहार उन मुनिराज को दिखलाये। उन्हें देखकर बहुगुणी मुनिवर चन्द्रगुप्त ने अपने मन में विचार किया कि यह अयुक्त है (ठीक नहीं है, इसमें कुछ गड़बड़ है), अतः उन्होंने आहार ग्रहण नहीं किया उसे अलाभ (अन्तराय) मानकर लौट गये। गुरु के निकट जाकर, प्रणाम कर उन्हें वह समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और प्रत्याख्यान लेकर स्थित हो गये। दूसरे दिन उन्होंने पुनः वन भ्रमण की (कान्तारचर्या की) उत्कण्ठा की और जब वे अन्य दूसरी दिशा में पहुँचे तब उन्होंने वहाँ सिध्द की हुई (तैयार) रसोई देखी, जो नाना प्रकार के रसों से युक्त थी। किन्तु वह रसोई (शाला) बिना युवती की थी। इसी कारण मुनिराज ने उस पर तत्काल विचार किया और उस दिन भी अन्तराय हुआ मानकर वे गुरु के आश्रम लौटे और अभिवादन कर उनको समस्त वृत्तान्त निवेदित किया। तब मुनि भद्रबाहु ने उन चन्द्रगुप्त को भव्य-भव्य (बहुत-ठीक-बहुत-ठीक) कहा, पुनः चन्द्रगुप्त पवित्र-भावना से (सम-वीतराग परिणामों से) उपवास धारण कर स्थित हो गये। अन्य (तीसरे) दिन वे चन्द्रगुप्त मुनि अन्य दिशा में कान्तार-चर्या हेतु गये। वहाँ वन के बीच में उन्होंने एक अकेली स्त्री देखी। उस अकेली स्त्री ने अपने हाथों में जलयुक्त मिट्टी का घड़ा लेकर उनका "ठा-ठा" (अत्र तिष्ठ अत्र तिष्ठ आदि) कहकर पडगाहन किया। 'अकेली स्त्री से आहार लेना भी अयुक्त है' ऐसा विचार कर मुनिराज चन्द्रगुप्त ने फिर आहार का त्याग किया और जाकर अपने गुरुदेव से निवेदन कर दिया। तब गुरु ने कहा कि "तुम्हें पुण्यबन्ध हुआ, क्योंकि तुमने व्रत की छाया (शोभा) को अभंग (निरतिचार) रखा (रक्षा की) है।"

निर्मल चित्त चन्द्रगुप्त मुनि भिक्षा के निमित्त चतुर्थ दिन अन्य दिशा में पहुँचे। वहाँ उन्होंने गोपुर तथा प्राकारों से युक्त चौराहों से रमणीक तथा मणिनिर्मित जिनगृहों से युक्त एक नगर देखा। वे क्षपणक (चन्द्रगुप्त)- श्रमण वहाँ जा पहुँचे। वहाँ (श्रावक-गण अपने अपने) दरवाजों पर उनको प्रतीक्षा में खड़े हुए थे। उनमें से एक (श्रावक) ने चन्द्रगुप्त मुनि को पडगाहा।

घत्ता - ऐरावत हाथी की सूँड के समान श्रेष्ठ हाथोंवाले वे मुनिवर विधिपूर्वक (नवधा भक्ति सहित) चर्या (भिक्षा) करके शीघ्र ही अपने आश्रम में लौट आये और अपने गुरु से बोले- "हे प्रभु, यहाँ एक नगर है, -

[१६]

Āchārya Bhadrabahu leaves for Heavenly abode. Āchārya Visākhanandin reaches Chola country (in South India) with his Samgha.

तहिँ सावयजण पवर जि णिवसहिँ दाण-पूय-विहि ते णिरु पोसहिँ।
एक्कहिँ घरि मइँ अन्न जि भुत्तउ सुयकेवलि तिं णिसुणिवि वुत्तउ।
भव्वु-भव्वु संजाउ गुणायर हुवउ णसल्लु हऊँमि वयसायर।
दिणि-दिणि जाइवि तह भुंजेव्वउ णियसत्तिए उववासु करेव्वउ।
5 एण विहाणेँ सो तहिँ णिवसइ घोरतवेण सदेहु किलेसइ।
भद्दबाहु चेयणि झाएप्पिणु धम्मज्झाणेँ पाण-चएप्पिणु।
गउ सुरहरि रिसि सुयकेवलि तासु कलेवरु ठविउ सिलायलि।
गुरुहुँ पाय गुरुभित्तिहिँ लिहियइँ णियचित्तंतरम्मि स णिहियइँ।
चंदगुत्ति संठिउ सेवंतउ गुरुहुँ विणउ तियलोयमहंतउ

घत्ता-

10 आयरिउ विसाहणंदि सवणे चोल-देसि गउ संघ-जुउ ।
एत्तहिँ पाडलिपुरि जे जि ठिया तत्थ अईव दुक्कालु हुउ ॥१६॥

♣

[१६]

आचार्य भद्रबाहु का स्वर्गारोहण। विशाखनन्दी ससंघ चोल-देश पहुँचते हैं।

-"जहाँ अनेक उत्तम श्रावक-जन निवास करते हैं और जो दान एवं पूजा विधि से निरन्तर अपने (धर्माचार) को पोषित रखते हैं, वहीं पर मैंने एक घर में आज आहार-ग्रहण किया है।"

श्रुतकेवली भद्रबाहु ने उनका कथन सुनकर उनसे कहा- "हे भव्य, हे गुणाकर, बहुत भद्र (कल्याणकर) हुआ। हे व्रतसागर, अब मैं निःशल्य हो गया। अब तुम प्रतिदिन वहाँ जाकर विधि पूर्वक आहार ले लिया करो और अपनी शक्ति पूर्वक उपवास भी किया करो।" इस प्रकार विधिपूर्वक वह चन्द्रगुप्त-मुनि वहाँ (आश्रम-गुफा में) रहने लगे और घोर तपस्या करते हुए कायक्लेश सहन करने लगे।

श्री श्रुतकेवली भद्रबाहु-ॠषि ने चेतन (आत्मा) का ध्यान करते हुए धर्मध्यान पूर्वक प्राण त्याग किये और स्वर्ग सिधारे।

मुनिवर चन्द्रगुप्त ने भद्रबाहु का कलेवर (मृतकशरीर) शिलातल पर स्थापित कर दिया। पुनः उनके चरणों को विशाल भींट (दीवाल) पर लिख दिया (उकेर दिया) और उन्हें अपने चित्त के भीतर भी निधि के समान स्थापित कर लिया। वे उन गुरु-चरणों की सेवा करते हुए वहीं स्थित रहे। ठीक ही कहा गया है कि- "तीनों लोकों में गुरु की विनय ही महान् है।"

घत्ता - उधर आचार्य विशाखनन्दि - श्रमण (मुनि) अपने संघ सहित चोल देश में पहुँचे और इधर जो-जो आचार्य पाटलिपुर में ठहर गये थे वहाँ (पाटलिपुर में) अत्यन्त भयंकर दुष्काल पड़ा (जिसका सामना उन्हें करना पड़ा) ।।१६।।

Heart-rendering account of 12 years famine of
Padalipura (modern Patnā)

[१७]

	णर-कंकालहिँ	अइविकरालहिँ।
	महियलु छण्णउ	जणु आदण्णउ
	दुव्वल-देहु	वज्जिय णेहु।
	जणणिय पुत्तहो	भज्जय कंतहो।
5	चिंता छंडिय	कंतइ खंडिय।
	पीडिय भुक्खइँ	असहिँ अभक्खहिँ।
	देउ ण धम्मो	णवि सुहकम्मो।
	लज्ज ण संजमु	चत्त कुलक्कमु।
	एरिस कालहिँ	लोय-दुहालहिँ।
10	तहँ पुणु सावय	पालिय णियवय।
	भत्तिकरेप्पिणु	पय पणवेप्पिणु।
	मुणिवर विंदहँ	जणियाणंदहँ
	भोयणु जच्छहिँ	सेवपडिच्छहिँ
	एण विहाणेँ	दाण-विहाणेँ।
15	कित्तिय वासर	जाम गया पर।
	ता एक्कहिँ दिणि	भुंजेप्पिणु मुणि।
	सावय भवणहु	संठिउ भवणहु।
	पडिआवंतहु	जिणहरि जंतहु।
	मग्गिं रंकहि	धरिउ असंकहि।।
20	उयरु रिसीसहु	फाडिउ णीसहु।
	भोयणु उयरहु	तेहिँ असिउ लहु।
	मुणि पंचत्तहिँ	पाविउ तेत्तहिँ।

घत्ता -

ता सावयलोयहिँ वट्टियहिँ सोयहिँ जाणिवि विरुवारउ जि खणि।
रिसिवर विण्णत्ता तेहिँ पवित्ता हुयहु अभद्दु जि एहु जणि ॥१७॥

(१७)

पाटलिपुर द्वादशवर्षीय दुष्काल का हृदय-विदारक वर्णन

[वह अत्यन्त विकराल दुष्काल कहने योग्य नहीं।] वह दुष्काल पृथ्वी तल पर छा गया। सभी जन दुखी हो गये। सभी की देहें दुर्बल हो गयीं। पिता-पुत्र, माता-पुत्र एवं पति-पत्नि ने पारस्परिक स्नेह का त्याग कर दिया। एक दूसरे की चिन्ता छोड़कर पत्नी ने पति को और पति ने पत्नी को खण्डित कर दिया (मार दिया अथवा भगा दिया)।

भूख की असह्य पीड़ा से लोग अभक्ष्य को खाने लगे। न देव का नाम लेते और न धर्म का काम करते, न सुनते तथा शुभकर्म भी नहीं करते थे। न किसी को किसी की लज्जा थी और न संयम (जीवदया) ही था। लोग अपने कुलक्रम को छोड़ बैठे। ऐसे दुष्काल में जहाँ लोगों का बड़ा बुरा हाल हो रहा था वहीं (उस समय भी) श्रावकगण अपने व्रतों का पालन कर, मुनिवर-समूह की भक्ति कर तथा उनके चरणों में प्रणाम कर उन्हें यथेच्छ आहार-दान दे रहे थे तथा उनकी सेवा की प्रतीक्षा किया करते थे, और मुनिगणों को आनन्द उत्पन्न कर रहे थे।

इस प्रकार की दान-विधि से जब कितने ही दिन (वर्ष) बीत गये तब एक दिन एक मुनिराज आहार ग्रहण कर श्रावक के भवन से अपने आश्रय की ओर चले। लौटकर आते हुए जिनगृह (मन्दिर) को जाते हुए उन ऋषीश्वर को मार्ग में रंकों (भूखों) ने अशंक (भयरहित) होकर पकड़ लिया और उन मुनीश के पेट को तीव्र नखों से फाड़ डाला और उनके पेट में स्थित भोजन को उन भूखों ने जल्दी-जल्दी खा डाला। उस उदर-विदारण से वे मुनिराज उसी स्थल पर पंचत्व को (मरण को) प्राप्त हो गये।

घत्ता - तब श्रावकजनों में गहरा शोक छा गया और विषमता की अनिवार्यता को जानकर उन्होंने तत्काल ही उन पवित्र ऋषिवरों से विनयपूर्वक कहा- "लोक में यह बड़ा ही अभद्र कार्य हुआ है। (अतः अब ऐसा कीजिए कि)-"

♣

(१८)

Mental conditon of Sravakas (House-holders) of Pādalipura at the time of severe famine and a glimpse of beginning of loose conduct of Sadhus (Ascetics).

अम्हहँ गेहहँ तुं सहमाणहु पत्त भरेप्पिणु भोयणु आणहु।
इत्थु जि वसहिहिँ पुणु अणुणइँ हत्थि खिवेप्पिणु णिरु सिध्दणइँ
एण विहाणेँ चरिय जि सेवहु कालपवट्टण चित्ति विवेयहु।
मिच्छाइट्ठिहिँ तिहँ पडिवण्णउ आयरियउ तेहिँ मणि णिरु दुण्णउ।
5 अवरदिणहिँ पुणु एक्क दियंवरु कालरूउ णग्गउ लंबियकरु।
गउ सावयघरु भिक्खाकारणि तहिँ सगब्भ-तिय एक्क वि गुणधारणि।
मुणिहिँ रूउ बीभच्छ णियच्छिवि खसिउ गब्भु भय खणि णवि छंडिवि।
ता हाहारउ परियणु जायउ कहिँ हौंतउ उहु मुणिवरु आयउ।
तं अणत्थु सावयहिँ मुणेप्पिणु रिसिवर भणिय पाय-पणवेप्पिणु।
10 कडि-पडि बंधिवि सण्हउ कंबलु चिवि कमंडल सुब्भु विगयमलु।
साणहँ भइण दंडु करि धारहु एण विहाणेँ भिक्खइँ विहरहु।

घत्ता-

तं तेहिँ वि भणिउ णउ अवगणिउ पहरियउ ठिय कंवलइँ।
सावय वरगेहहु पयडिय णेहहु आणइ णिच्च जि संवलइँ।।१८।।

♣

(१८)

दुष्काल के समय पाटलिपुर के श्रावकों की मनोदशा एवं साधुओं के शिथिलाचार की झाँकी।

-"आपसे हमारी यह अनुनय-विनय है कि आप सभीजन हमारे घरों से सम्मान सहित पात्र भरकर आहार (भोजन) ले आया कीजिए और फिर यहाँ वसति (मन्दिर) के भवनों में सिध्दों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उस आहार को हाथों में क्षेपण कर निरन्तर चर्या करते रहिए। इस विधान से चर्या का (भिक्षा का) सेवन कीजिए और अपने चित्त में काल के परिवर्तन का अनुभव कीजिए कि कैसा दुष्काल आ गया है?

तब उन मिथ्यादृष्टि-मुनियों ने श्रावकों के कथन को स्वीकार कर लिया किन्तु उन मिथ्यादृष्टियों की भावनाओं से आचार्य-गण अपने-अपने मन में बड़े दुःखी हो गये।

पुनः अन्य किसी एक दिन कालरूप (भयंकर) नग्न एवं दीर्घबाहु एक दिगम्बर-मुनि भिक्षा के निमित्त एक श्रावक के घर गया। उस घर में एक मिथ्यात्व-दोष से मुक्त गृहिणी भी थी, जो गर्भवती थी। मुनि के बीभत्स (भयानक) रूपको देखकर उसका गर्भ खिसक गया (गर्भ-पात हो गया)। वह इतनी डर गयी कि एक क्षण को भी अपना भय न छोड़ सकी। उसने हाहाकार मचा दिया।

तब परिजनों में भी (परिवार के जनों में और पुरजनों में भी) हा-हा रव (शब्द) होने लगा और वे कहने लगे कि कहाँ से यह मुनि यहाँ आ गया।

तब श्रावकों ने उस (घटना) को बड़ा अनर्थ (अनिष्ट) माना और ऋषिवरों के चरणों में प्रणाम कर (पूज्य गुरुओं से) निवेदन किया कि "कटि में (कमर में) पट (लंगोटी) बाँधकर, कम्बल ओढ़कर विगतमल (निर्मल) स्वच्छ कमण्डल को छोड़कर तथा श्वानों (कुत्ता) के भय से दण्ड के (लकड़ी को) हाथ में धारण कीजिए और इसी विधान से भिक्षा के लिए विहार किया कीजिए।"

घत्ता - तब श्रावकों के कथन का उन मुनिवरों ने अवगणन नहीं किया (तिरस्कार - निरादर नहीं किया) । लंगोटी पहिनकर तथा कम्बल ओढ़कर वे स्नेहपूर्वक श्रावकों के घर से नित्य हो सम्बल (भिक्षा - भोजन) लाने लगे -॥१८॥

(१९)

Āchārya Visakhanandi after returning from Chola country with his Samgha comes to Chandragupta and considering him of loose conduct does not reciprocate his Namaskara (Salutation).

पिहिवि कवाड़ वसहिहिँ दारहुँ वइसहिँ सव्व जि भोयण बारहु।
दारुपत्ति सइँ हत्थे भुंजहिँ अंतराय मल-दोस ण जुंजहिँ।
एत्तहिँ बारह-वरिसाणंतरि मुणि विताहणंदी एत्थंतरि।
णियइ देसि वाहुडिउ सइत्तउ जहिँ गुरु चिरु छंडिउ तहिं पत्तउ।
5 सहुँ संघे गुरु णिसही वंदिय लेविय वासु थक्क विजयंदिय।
चंदगुत्तिणा पणविय ते मुणि पडिवंदण तुहु दिंति ण बहुगुणि।
मह अडविहि महव्वयइँ ण रक्खिय एण जि कंदमूल-फल भक्खिय।
इय चिंततहु तहँ चित्तंतरि रयणि गया रवि उयउ णहंतरि।
तत्थहु चल्लिय रिसिवर जामहिँ गुरु-पय भत्तिउ भासिउ तामहिँ।
10 एत्थु महापुरु वसइ नियच्छहु एत्थ पारणहुँ विहिवि पह गच्छहु।
ता अच्छरिउ सचित्ति वहंतैं तासु पुट्ठि ते चल्लि तुरंतैं।

घत्ता-

णयरम्मि पइट्ठा चित्ति पहिट्ठा सावयलेयहिँ ते धरिया।
बारह-सहसइँ वर भुंजिय रिसिवर पुणि गुहाहिँ आणा तुरिया।।१९।।

♣

(१९)

विशाखनन्दी संघ सहित चोल-देश से लौटकर चन्द्रगुप्त के पास लौटते हैं किन्तु उसे शिथिलाचारी समझकर वे उसके नमस्कार का प्रत्युत्तर भी नहीं देते।

- और वसतिका - द्वार बन्द कर उसके बाड़े में सभी साधु भोजन के समय बैठकर दारुपात्र (काष्ठपात्र) से स्वयं अपने-अपने हाथों से उठाकर भोजन करने लगे। अन्तराय, मल एवं दोषों का उन्हें विवेक नहीं रहा। इस प्रकार उनके बारह वर्ष बीत गये।

और इधर, मुनि विशाखनन्दि विहार करते-करते अपने देश की ओर लौटे। उसी क्रम में वे वहाँ पहुँचे जहाँ उन्होंने चिरकाल-पूर्व अपने गुरु (भद्रबाहु) को छोड़ा था। संघ-सहित उन्होंने गुरु भद्रबाहु की निषही (समाधिभूमि) की वन्दना की और जितेन्द्रिय वे मुनीन्द्र वहीं रुक गये। चन्द्रगुप्त मुनि ने उन (आगत) मुनिराजों के प्रणाम किया तो भी उन बहुगुणी मुनियों ने प्रतिवन्दना नहीं दी। " इस महा-अटवी के मध्य यह चन्द्रगुप्त-मुनि महाव्रतों की रक्षा नहीं कर सका होगा, उसने कन्दमूल एवं फलों का भक्षण अवश्य किया होगा।" यही विचार वे सभी मुनि अपने मन में करते रहे और इसी सोच-विचारी में रात्रि व्यतीत हो गयी तथा आकाश में सूर्योदय हो गया।

उसी समय जब सब ऋषिवर वहाँ से चलने लगे तभी मुनिराज चन्द्रगुप्त ने गुरु के चरणों की भक्तिपूर्वक उन ऋषियों से कहा- "देखिए, इस दिशा में एक महानगर स्थित है, उसमें पारणा करने के बाद प्रस्थान कीजिए। "वे सभी साधु यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और वे तत्काल ही उन चन्द्रगुप्त मुनिराज के पीछे-पीछे चल दिये।

घत्ता - वे सभी मुनि उस नगर में प्रविष्ट हुए और चित्त में प्रहृष्ट (प्रसन्न) हुए। वहाँ के श्रावक-जनों ने उन सभी को पडगाहा और उन बारह हजार ऋषिवरों को उन्होंने विधिपूर्वक श्रेष्ठ आहार-दान दिया। तत्पश्चात् वे ऋषिवर शीघ्र ही अपनी गुहा-वसति में लौट आये। ॥१९॥

(२०)

On the request of Muni Chandragupta, Acharya Visakhanandi also takes up Kantara-Carya and realising his achievement to be the effect of the severe penance (Tapasya) of Chandragupta, he dispels his suspicion towards him and moves towards Padalipura with him.

वुड्डउ वंभयारि तह खुल्लउ तेत्थु कमंडलु तेणु जि भुल्लउ।
तहु कारणि सो पुणु जा गच्छइ ता घरु पुरु तहिँ किंपि ण पिच्छइ।
तरुसाहहिँ भुल्लंतु कमंडलु दिट्ठउ गिण्हउ पुरिय वरजलु।
पुणु आविवि तिं गुरुहु पउत्तउ अच्छरियउ मइँ दिट्ठु णिरुत्तउ।
5 णउ पुरु णउ घरु णउ ते सावय कत्थ गया फेडिह छुह-आवय।
ता विसाहणंदि मुणिणाहैँ चंदगुत्ति संसिउ गयवाहैँ।
एयहु पुण्णु पहावेँ पुरुवरु मह अडविहिँ किउ दिविहिँ सुहयरु।
सच्चु-सच्चु तुहुँ परमजईसरु सच्चु-सच्चु (तुह) गुरु भत्तीयरु
सच्चु-सच्चु तुहुँ वयहु अभंगहु इम संसिवि तहु भट्टउ अग्गउ।
10 सीसहु लोउ करिवि आलोयणु तासु जि दिण्णउ गुरुणा तहिँ खणउ।
पुणु सइँ गिण्हिउ संघहु दिण्णउ जं अविरयहिँ असणु आदण्णउ।
सयलहिँ तहुँ पडिवंदण दिण्णिय पुणु तत्थहु चल्लिय तव-किण्णिय।

घत्ता-

पाडलिपुर पत्तउ संघेँ जुत्तउ रिसि विसाणणंदी सवणु।
सावयहिँ अतुच्छउ विहिउ महुच्छउ संठिउ जा आसणि सगुणु ।।२०।।

(२०)

चन्द्रगुप्त मुनि के अनुरोध से आचार्य विशाखनन्दी भी कान्तार चर्या करते हैं और उसे चन्द्रगुप्त की तपस्या का प्रभाव जानकर उनके प्रति उत्पन्न अपने सन्देह को दूर कर उनके साथ ही पाटलिपुरकी ओर प्रस्थान करते हैं।

उस संघ में एक क्षुल्लक - ब्रह्मचारी भी था। (संयोग से) वह अपना कमण्डल वहीं पर भूल आया था। उसी (कमण्डल को लेने) के लिए वह (क्षुल्लक) जब पुनः वहाँ जाता है, तो वहाँ वह श्रावक गृह तथा नगर (आदि) कुछ भी नहीं देखता। हाँ, उसने एक वृक्ष की शाखा पर मधुर एवं पवित्र जल से भरे हुए उस कमण्डल को झूलता हुआ देखकर उसे उठा लिया।

पुनः उसने लौटकर अपने गुरु (विशाखनन्दी) से कहा कि - "(आज -) मैंने एक निरा आश्चर्य देखा है। (जहाँ हम लोगों ने आहार लिया था वहाँ-) न तो वह नगर है, न वह घर है और न ही (हम लोगों की) क्षुधारूपी विपत्ति को टालनेवाले वे श्रावकगण ही हैं। (पता नहीं-) वे सब कहाँ चले गये।" तब सांसारिक व्याधियों को नष्ट करनेवाले उन मुनिनाथ विशाखनन्दी ने उन मुनिराज चन्द्रगुप्त की प्रशंसा की और कहा कि - "इन्हीं मुनिराज चन्द्रगुप्त के पुण्य - प्रभाव से देवों ने इस अटवी के मध्य इस सुखकारी नगर का निर्माण किया था। हे चन्द्रगुप्त, तुम सचमुच ही सच्चे परम यतीश्वर हो, (भद्रबाहु-) गुरु के प्रति सचमुच ही तुम्हारी महान् भक्ति है। सचमुच ही तुम अभंग व्रतधारी हो।"

इस प्रकार प्रशंसित उस भद्र चन्द्रगुप्त के आगे सभी शिष्यों ने केशलुन्च कर आलोचना की। गुरु विशाखनन्दी ने भी तत्काल उन्हें प्रत्यालोचना दी। पुनः अविरति - देवों द्वारा प्रदत्त जो आहार स्वयं ग्रहण किया था तथा संघ को लेने के लिए सहमति प्रदान की थी, उसके लिए भी दण्ड लिया तथा संघ को दण्डित किया। फिर उन सभी मुनिराजों ने चन्द्रगुप्त को प्रतिवन्दना प्रदान की और तब तप से क्लान्त वह मुनिसंघ विहार कर वहाँ से चल पड़ा।

घत्ता - श्रमण विशाखनन्दि-ऋषिवर अपने संघ सहित पाटलिपुर (पाटलिपुत्र) आ पहुँचे। उन्हें देखकर श्रावकजनों ने महान् उत्सव किया और उन सद्गुणियों को आसन पर विराजमान किया।

(२१)

Murder of Sthulacharya by his disciples of loose- conduct
After his death Sthulacharya is born in Vyantara-
Deva - Yoni (Nucleus of Peripatetics) and
persecutes the murderer disciples.

तक्खणि थूलभद्द - आयरिएँ रमिल्लायरियं हय-दुरिएँ।
तेहिंवि णियसंघहँ सहु गुरुपय वंदेप्पणु फेडिय आवयसय।
पायच्छित्तु सदोसहु विहियउ णग्गत्तणि सदेहु सणिहियउ।
थूलायरियं पुणु णियासीसहँ भासिज्जइ पयडिय बहुरीसहँ।
५ आवह गुरुहुँ पासि जाइज्जइ पायच्छित्तु पय तें लिज्जइ।
दुणयमग्गु एहुँ छंडिज्जइ परम दियंवरु रूउ धरिज्जइ।
इय तहु वयणु ण ताहँ जि रुच्चइ किंपि एम होज्जउ जि समुच्चइ।
णग्गत्तणि को अप्पउ भंडइ पाणिपत्ति को इंदियदंडइ ।
एक्कवार भोयणु जि दुहिल्लउ णिक्कारणि को मरइ तिसल्लउ।
१० इय भणेवि दुग्गहु ण मिल्लहिं कुपहु पसारिउ तहि माइल्लहिं।
पुणु सो ताहँ जि मोहं भासइ दुव्वयणहिं अहणिसु संतासइ।
ता असहंतें तेहि णिरारिउ रयणिहिं सोवंतउ गुरु मारिउ।
सो मरेवि संजायउ विंतरु अवहिए मुणिउँ आसि भवंतरु।
तेण स सिस्सवग्गु संतासिउ मह-उवसग्गें दुक्खु पयासिउ।

घत्ता -

१५ ता तेहिमि सयलहिँ महामय वियलहिँ पुज्जिवि आराहियउ सुरु।
सामिय णिरु रक्खहिँ इत्थु पयक्खिहिँ अम्हहँ तुहुँ पायड जि गुरु।।२१।।

(२१)

शिथिलाचारी साधुओं द्वारा स्थूलाचार्य की हत्या । स्थूलाचार्य मरणोपरान्त व्यन्तरदेव- योनि में उत्पन्न होकर हत्यारे साधुओं पर उपसर्ग करते हैं।

वहाँ पापों को नष्ट करनेवाले स्थूलिभद्राचार्य और रामिल्लाचार्य इन दोनों ने तत्काल ही अपने- अपने संघसहित विशाखनन्दि गुरु के चरणों की वन्दना कर (दुष्काल-कालीन) समस्त आपत्तियाँ (कम्बल, पट, पात्र , दण्ड आदि) हटा दीं। उन्होंने अपने समस्त दोषों का प्रायश्चित किया और अपनी देह को नग्नपने से युक्त कर लिया (अर्थात् दिगम्बर हो गये)। पुनः स्थूलाचार्य ने अपने शिष्यों से बहुत रोष (क्रोध) प्रकट कर कहा - " आओ, हम लोगों को गुरु के पास चलना चाहिए और उनके चरणों में प्रायश्चित लेना चाहिए। अब (दुष्काल के) इस दुर्नय का मार्ग (मिथ्याचर्या) छोड़ देना चाहिए। परम दिगम्बर रूप को धारण करना चाहिए।

उन स्थूलाचार्य का वह कथन उनके शिष्यों को नहीं रुचा। उन्होंने कहा कि - "अब दिगम्बर कैसे बना जाय? अब तो यही (दुष्काल में आचरित-) मार्ग समुचित है। नग्नत्व में कौन अपने को फँसावे। पाणिपात्रत्व में अपनी इन्द्रियों को कौन दण्डित करे? एक बार भोजन कर कौन दुःखी होवे? अकारण ही तृषातुर होकर कौन मरे? " इस प्रकार कहकर उनके शिष्यों ने दुराग्रह नहीं छोड़ा और उन मायाचारियों ने उसी समय से वहाँ कुमार्ग का प्रसार करना प्रारंभ कर दिया। तब स्थूलाचार्य ने उन्हें मोही (मिथ्यात्वी) कह दिया तथा दुर्वचनों से उन्हें अहर्निश सन्त्रास देने लगे। उन दुर्वचनों एवं सन्त्रास को सहन नहीं कर पाने के कारण उन शिष्यों ने (एक दिन अवसर पाकर) रात्रि में निरा अकेले सोते हुए उन गुरु स्थूलाचार्य को मार डाला। वे गुरु मरकर व्यन्तरदेव हुए। उस व्यन्तरदेव ने अवधिज्ञान से अपने भवान्तर को जान लिया। अतः उसने अपने शिष्यवर्ग को सन्त्रस्त किया और उसने उन-पर महान् उपसर्ग कर उन्हें दुःखी किया।

घत्ता - तब महामाया से विगलित उस सभी मुनियों ने उस व्यन्तरदेव की पूजा कर आराधना की और कहा - "हे स्वामिन्, हमारी रक्षा करें। आप यहाँ प्रकट हों। अब प्रकट रूप में आप ही हम लोगों के गुरु हैं-" ॥२१॥

(२२)

Hearing the prayer of distressed disciples Vyantara - Deva makes his appearance before them and orders them to be his followers and propragate - (i) wearing of white clothes for Sadhus (Sahelaka) (ii) Salvation of women and (iii) morsel of food for Kevalines (Kevali-Kavalāhāra) . The disciples accept it and train-up a Princess named Swāminī

पइँ अम्हि णिरु कट्ठिं पालिय विज्जब्भासु कराविवि लालिय।
एव्वहिं मारण किं आढत्तइँ सुणिवि तुट्ठ सुरु ताहँ पउत्तइँ।
भासइ वितरु महु पय जुयलउ णिच्चाराहहु जइ इहु विमलउ।
मज्झु णामु जि अहणिसु घोसहु गुरु भणेवि णेवज्जहिं पोसहु।
5 ता हउँ तुम्हहँ खमु सदेसहँ विणउ उवाउ जि अत्थि सदोसहँ।
ता तेहिँ जि तहि तं पडिवण्णउ गउ सठणि सुरु वि ति सुपसण्णु।
दारु-पट्टि तहुँ पाय लिहेप्पिणु ते पुज्जहि तियाल पणवेप्पिणु।
ते तहि कंवलधर णिरु संठिय कामु ण भणहिं रायोक्कंठिय।
णहु विसाहणंदिहु पयसेवहिं णग्गत्तणु सुविरुद्ध णिवेयहिँ।
१० तब्भवि तियहँ मोक्खु आहासहिँ केवलीहु भोयणु पुणु दंसहिँ।
णग्गउ देउ ण जणि पुज्जिज्जइ तिरियहँ मणपज्जउ सपंज्जइ।
कियउ भिण्णु मउ एरिसु पावहिँ सावयाहँ पुणु तं पहु दावाहिँ।

घत्ता -

ता कासु वि रायहु तणिय सुया सामिणि णामें ललिय-गिरा।
सा तेहिँ पढावइ भूयलम्मि हुय पयड परा ॥२२॥

(२२)

दुष्ट साधुओं की प्रार्थना सुनते ही व्यन्तरदेव उन्हें दर्शन देकर अपना अनुयायी बनने तथा सचेलकता, स्त्री-मुक्ति एवं केवली-कवलाहार के प्रचार का आदेश देता है। साधु-समूह उसे स्वीकार कर स्वामिनी नामकी एक राजकुमारी को प्रशिक्षित करते हैं।

"हम सब अपने पद को बड़े कष्ट से पाल रहे हैं और विद्याभ्यास कर-कराके उसका पोषण कर रहे हैं। फिर भी हे देव, आपने हमें इस प्रकार मारने का उपक्रम क्यों किया?" उनके वचन सुनकर वह व्यन्तरदेव बड़ा सन्तुष्ट हुआ और बोला - "यदि इसी समय से मेरे पवित्र निर्मल चरण-युगल की नित्य आराधना करना प्रारम्भ कर दो, नित्यप्रति मेरे नाम का उच्चारण किया करो और मुझे गुरु कहकर मेरा नैवेद्य के द्वारा पोषण करो तो मैं तुम्हारे सभी दोषों को क्षमा कर दूँगा। क्योंकि विनयगुण ही दोषों को क्षमा करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है (इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं)।"

तब उन मुनियों ने भी उस व्यन्तरदेव की उस आज्ञा को स्वीकार कर लिया और अपने मन में प्रसन्न होकर वह देव भी अपने स्थान पर वापिस लौट गया। उन साधुओं ने भी उस व्यन्तरदेव के चरण-युगल दारुपट्टी (काष्ठ-फलक) पर लिखकर वे त्रिकाल उसे प्रणाम कर पूजने लगे। वे सब वहाँ कम्बल धारण कर रहने लगे।

राग से उत्कण्ठित वे साधु कहने लगे कि - "विशाखनन्दी क्या मुनि कहला सकते हैं? अब हम उनके चरणों की सेवा नहीं करेंगे। नग्नपना धर्म - विरुद्ध है", वे ऐसा ही निवेदन (प्रचार) करने लगे। (इतना ही नहीं) वे यह भी प्रचार करने लगे कि ' उसी भव से स्त्री मोक्ष जाती है'। वे केवली को भोजन करनेवाला भी बताने लगे। यह भी कहने लगे कि ' तिर्यञ्चों को मनः पर्ययज्ञान उत्पन्न होता है। वे प्रचार करने लगे कि ' जनता को नग्नदेव की पूजा नहीं करना चाहिए।' इस प्रकार उन पापियों ने एक भिन्न-मत (दूसरा मत - सम्प्रदाय) चला दिया और उसी समय से श्रावकों को भी (अपना मत मानने के लिए) दबाने लगे।

घत्ता - तब किसी राजा की मधुरभाषिणी स्वामिनी नाम की कन्या को भी उन साधुओं ने पढ़ाया। आगे चलकर वही राजकुमारी भूतल पर (उस नवीन मत में) एक श्रेष्ठ दक्षमति (पण्डिता) के रूप में प्रकट (प्रसिद्ध) हुई ।।२२।।

(२३)

Marriage of Swāminī with King of Valabhī. On their request her Gurus (Āchāryas) accept *wearing white clothes.*

सोरठि वलहीरपुर - परमेसैं सा परिणी पुणु तेण वसेसैं।
ताई सगुरु भासिवि आणाविय णिय भत्तारहु पुणु जाणाविय।
अद्ध पंथि गय सम्मुह जामहिं राएँ पियमय भासिउ तामहिं।
कंवल-दंड-धारि मुंडिय-सिर ए गोपालवेस दीसहिं किर॥
५ णउ णग्गा णउ पहिरिय वत्था एयहँ वंदण पिए अपसत्था।
ता राणी सुब्भईं वरवत्थईं तहँ जि दिण्णयाईं सुपसत्थईं।
पवर महुच्छैं पुरि परिसारिय विहिय पहावण जणमणहारिय।
सेयंवर-मउ तइया होंतउ संजायउ जणि मायावंतउ।
सामिणि राणिहिं गब्भि उवण्णी जक्खिल णाम पुत्ति गुणपुण्णी।
१० सा परिणिय करहाडपुरेसैंन रूवें जि जित्तउ कामु विसेसैं।
ताइवि णियगुरु तहिं बुल्लाविय पइसउ सम्मुहँ गय अणुराइय।
ताहँ वेसु पेच्छेप्पिणु राएँ राणी भासिय पवरविवेएँ।
ए पासंड रूवधर दीसहिं कंवल ढंकिय सिर तियवेसहिं।

घत्ता -

मा महु पुरि पइसहु गय तव-लेसहु एम भणिवि गउ राउ-धरि।
१५ ता राणी वुत्तउ ताहँ णिरुत्तउ तुम्ह पवेसु ण इत्थु पुरि॥२३॥

♣

(२३)

वलभी-नरेश के साथ स्वामिनी का विवाह। उनके अनुरोध से उसके गुरुजन श्वेत-वस्त्र धारण कर लेते हैं।

- फिर , सोरठ (सौराष्ट्र) देशान्तर्गत वलभीपुर के राजा के साथ विशेष रूप से उस स्वामिनी नामक कन्या का विवाह कराया गया। उस स्वामिनी रानी ने अपने पति के लिए उन साधुओं को अपना गुरु बताकर उन्हें अपने पति द्वारा ही निमन्त्रित कराया। (गुरुओं के आगमन की सूचना मिलते ही उनके स्वागतार्थ-) जब वे राजा-रानी आधे मार्ग में पहुँचे, तभी राजा ने अपनी प्रियतमा से कहा - "कम्बल एवं दण्ड (डण्डा) धारण किये हुए तथा सिर मुड़ाये हुए ये तुम्हारे गुरु (साधु) निश्चय ही गोपालक जैसे दिखाई दे रहे हैं। ये न तो नग्न हैं और न वस्त्र ही पहने हुए हैं। हे प्रिये , इनका तो वन्दन ही अप्रशस्त है।"

राजा का कथन सुनकर रानी ने उन साधुओं को प्रशस्त शुभ्र वस्त्र दान में दिये (और उन्हें पहना दिये)। फिर जन-मनहारी महोत्सव के साथ उन्हें वलभीपुर में प्रविष्ट कराया। उनके आगमन से वहाँ बड़ी प्रभावना हुई। उसी समय से मायावी श्वेताम्बर - मत प्रचलित हुआ और लोगों में उसका प्रचार हुआ।

रानी स्वामिनी के गर्भ से, गुणों से परिपूर्ण जक्खिल नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। अपने रूप-सौन्दर्य से कामदेव को भी जीत लेनेवाली , उस जक्खिल का विवाह करहाटपुर के राजा के साथ कर दिया गया।

उस जक्खिल रानी ने भी गुरुओं (श्वेताम्बर-साधुओं) को अपने यहाँ (करहाटपुर में) बुलवाया और पति सहित अनुरागपूर्वक उनके सम्मुख गयी। उनके वेश को देखकर परम विवेकी राजा ने रानी से कहा- 'ये तो पाखण्डियों का रूप धारण किये हुए दिखाई देते हैं। ये सभी कम्बल से सिर ढँके हुए स्त्री के वेश में (आये हुए) हैं-

घत्ता - " अतः लेशमात्र तपस्या नहीं करनेवाले इन साधुओं का प्रवेश मेरे नगर में मत कराओ।" इस प्रकार आदेश देकर राजा अपने घर लौट गया। इधर (राजा का कड़ा रूप देखकर) रानी जक्खिल ने उन साधुओं से कहा और समझाया कि " आपका प्रवेश इस नगर में नहीं हो सकेगा" ॥२३॥

(२४)

Wedding of Jakkhilā, daughter of Swāminī, with the King of Karāhatapura. On their inspiration some monks (Sadhus) accept the principle of Nirgrantha Emergence of 'Valiya Samhgha ' therefrom. Redaction of Jaina-Canons (Srutanga) by the disciples of Visakhanandi and start of Sruta-Panchami -Parva.

तुम्हहिँ णिग्गंथ जि होइव्वउ सामिय इह णयरम्मि सेइव्वउ।
ताहि वयण तेण अवगण्णिउ हिययरु जाणेप्पिणु खणि मण्णिउ।
हुउ ता वलिय - संघ विक्खायउ तइया हुंतउ वड्डिया भायउ।
एवमाय हुय पवर जि गच्छइँ सेयंवर णिवसंति सइच्छइँ।
५ रिसि विसाहणंदिहु पुणु सीसइँ विण्णि जाय तव वलिण गरीसइँ।
पुप्फयंत - भूयवली[1] अहिहाणइँ पवयणंग अत्थेण पहाणइँ।
तेहिं सुयंगु लिहेवि सुहत्थिहिँ कारण मुणिवि चडाविउ पोत्थहिँ।
तुच्छबुद्धि अग्गइँ जणु होसइ एक्केक्खरु पुणु - पुणु घोखेसइ।
पंचमु दिवसि सत्थु जि लिहियउ सुय-पंचमि विहाणु तिं विहियउ।

घत्ता -

१० पंचमकालहु मज्झि जणवउ खीणु हवेसइ।
वीसोत्तरु सउ अद्ध परमाउसु तहिं होसइ ॥२४॥

---

१. मूल प्रति मे भूयवलि पाठ है।

(२४)

रानी स्वामिनी की पुत्री जक्खिल का करहाटपुर के राजा के साथ विवाह। उनकी प्रेरणा से कुछ साधु निर्ग्रन्थपना स्वीकार कर लेते हैं। इसी से बलियसंघ (यापनीयसंघ?) की उत्पत्ति हुई। विशाखनन्दी के शिष्यों द्वारा श्रुतांग-लेखन एवं श्रुत - पंचमी पर्वारम्भ।

(रानी जक्खिल ने पुनः उस साधु - समूह को समझाया कि-) " हे स्वामिन्, अब आप लोग निर्ग्रन्थ बन जाइए और इस नगर में निवास कीजिए।" (पहले तो) उस साधु-समूह ने उसके कथन की अवहेलना की, किन्तु कुछ ही क्षणों के पश्चात् उसे हितकारी मानकर स्वीकार कर लिया।

तभी से एक प्रमादी (नवीन) मत और उत्पन्न हुआ, जो जावलिय (यापनीय?) संघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इस प्रकार वह एक प्रवर गच्छ के रूप में प्रचलित हुआ। वे जावलिय अपनी - अपनी इच्छानुसार विचरण करने लगे।

इधर ऋषिवर विशाखनन्दी के तपोबल से गरिष्ठ पुष्पदन्त एवं भूतबलि नाम के दो शिष्य हुए, जो प्रवचनांगों (द्वादशाङ्ग-वाणी) का अर्थ करने में प्रधान थे। " आगे चलकर लोग तुच्छ बुद्धिवाले होंगे। वे एक-एक अक्षर बार-बार (कठिनाईपूर्वक) घोखेंगे (पढ़ेंगे)", यह जानकर उन शिष्यों ने अपने हाथों से श्रुतांगों को लिखकर पोथी के रूप में उन्हें चढ़ाया (तैयार कर समर्पित किया)।

चूँकि पंचमी के दिन उन्होंने उस श्रुतांग (शास्त्र) को लिखा (पूर्ण किया) था, अतः उसका विधान श्रुतपंचमी के नाम से किया गया।

घत्ता - पंचमकाल में लोगों की आयु क्षीण हो जायेगी और बीस अधिक एक सौ (अर्थात् १२०) की आधी अर्थात् ६० वर्ष की उत्कृष्ट (अधिकाधिक) आयु हो जायगी। ॥२४॥

(२५)

Description of Panchama kāla (5th era or Kāla)
Introduction of first wicked Kalki King-
Chaturamukha of Pādalipura.

पुणु जिणेण भासिउ कय णिच्छइ　एक्क - सहस-वरिस गय पच्छइ।
होसइ कक्की जय विक्खायउ　चउमुहणामैं लोहु कसायउ।
पाडलिउत्ति णयरि णिवसेसइ　एयछत्तु महियलि भुंजेसइ।
अण्णाएँ लोयहँ दंडेसइ　महकरेण पुहई पीडेसइ।
५　एक्कहिँ दिणि सो मंतिहु पुच्छइ　को महु णवइ ण दंडु पडिच्छइ।
मंति भणेसइ परम दियंवर　केर णमणहिँ वासिय गिरिवर।
सावय-मंदिर हत्थहिँ भुंजइ　ते किं तुम्हहँ दंडु पउंजइ।
तं णिसुणेवि कलंकिउ जंपइ　भोयणद्धु गिण्हहुँ तहँ संपइ।
इय भासंतउ सो जि अकालैं　तडि मारेव्वउ सीसि करालैं।
१०　मरिवि पढम णरयहिँ जाएसइ　पच्छइ तहु सुउ रज्जु करेसइ।
जणवउ णय-मग्गि पालेसइ　धम्मपहावण पयड करेसइ।

घत्ता

तहु पच्छइँ पुणु अण्ण वीस कलंकिय होसहिँ।
दुच्चरियहिँ लोहंधु दुह जणम्मि पोसेसहिँ ॥२५॥

♣

(२५)

पंचम काल का वर्णन। पाटलिपुर के प्रथम दुष्ट कल्कि राजा चतुर्मुख का परिचय।

फिर जिनेन्द्र ने निश्चय कर कहा है कि (इस काल के) एक हजार वर्ष बीतने के पश्चात् जगद्विख्यात लोभ - कषाय से परिपूर्ण चतुर्मुख नाम का एक कल्कि (राजा) होगा। वह पाटलिपुर नगर में निवास करेगा तथा इस पृथ्वीतल को एकछत्र होकर भोगेगा। अन्यायपूर्वक लोगों को दण्ड देगा और महाकरों (बहुत अधिक टैक्सों) से पृथ्वी को पीड़ित करेगा।

एक दिन वह अपने मन्त्री से पूछेगा कि मुझे कौन-कौन व्यक्ति नमस्कार नहीं करते तथा मेरे दण्ड को कौन-कौन व्यक्ति स्वीकार नहीं करते? तब मन्त्री कहेगा कि "गिरि-कन्दराओं में रहनेवाले परम-दिगम्बर मुनि आपको क्यों नमस्कार करें? वे श्रावकों के घर जाकर हाथों पर आहार लेते हैं। वे आपका दण्ड क्यों स्वीकार करें?"

उस मन्त्री का कथन सुनकर वह कलंकी राजा कल्कि कहेगा कि "भोजन - काल में श्रावकों को घर जाकर उन दिगम्बर मुनियों से आधा-भोजन दण्ड (कर-टैक्स) स्वरूप ग्रहण करो।" राजा कल्कि के इस प्रकार कहते ही उसके सिर पर भयानक वज्रपात होगा और वह अकाल में ही मारा जायेगा। मरकर वह प्रथम नरक में जायेगा।

उसके बाद उसका पुत्र राज्य करेगा। वह न्यायमार्ग से जनपद का पालन करेगा तथा धर्म की प्रभावना को प्रकट करेगा।

घत्ता - इस दूसरे कल्कि के बाद भी अन्य २० (बीस) कलंकी कल्कि राजा होते रहेंगे, जो लोभान्ध होकर अपने दुश्चरितों से जनता को दुःख दे-देकर उसका पालन करते रहेंगे। ।२५।।

♣

(२६)

Description of wicked and deceitful work of Jalamanthana, the last kalki of Pādalipura. Interesting account of last span of Panchama Kāla, after the death of Jalanmanthana and of 'Sixth Kāla.'

अंतिमिल्लु जलमंथणु णामें होसइ पाडलिपुरिहिँ अकामें।
तहिँ जि कालि एक्कु रिसि होसइ वीरंगउ णामें तउ पोसइ।
सव्वसिरी तहिँ एक्क जि अज्जा होसइ पालइ वय णिरवज्जा।
अग्गिलु णामें भासिउ सावउ फग्गुसिरीहिँ पयडिय सायउ।
५ तेण जि जणवउ पुव्व-विहाणें पीडिव्वउ दंडें अवमाणें।
मुणिवर अज्जिय हत्थहु भोयणु छंडेसइ पेसिवि किंकरगणु।
सो तक्कालें असणि हणेव्वउ अणसणि जइ जुयलेण मरेव्वउ।
सावय-साविय तेम जि सिट्ठा चारिवि दिवि जाहिंति विसिट्ठा।
पक्ख णवासिय पंचमकालहु सेस जि थक्कइ जाम करालहु।
१० तइया कत्तिय मासि पयक्खइ अम्मावसि वासरि तम पक्खइ।
पुव्वण्हइँ धम्महँ खउ होसइ मज्झण्डे णिवसासणु णासइ।
अवरण्हेँ खय जाय हुवासणु पंचमु कालु एहु दुहपोसणु।

घत्ता-

अइदुस्समु कालु छट्ठउ तहु पच्छइ हवइ।
एक्कवीस सहसाइँ संवच्छर सो माणु जि हवइ ॥२६॥

♣

(२६)

पाटलिपुर के जलमन्थन नामक अन्तिम कल्किराजा के दुष्ट-कार्यों का विवरण। जलमन्थन की मृत्यु के बाद पंचमकाल के अन्तिमांश एवं छठे काल का रोचक वर्णन।

पाटलिपुर (पाटलिपुत्र) में अन्तिम पापी कल्कि राजा जलमन्थन नाम का होगा। उसी के समय में वीरांगद नाम के एक तपस्वी ऋषिराज होंगे। उसी के समय में निर्दोष-व्रतों का पालन करने वाली सर्वश्री नाम की एक आर्यिका (साध्वी) भी होंगी। उनके समय में अग्गिल नाम के एक श्रावक का होना भी बताया गया है तथा फल्गुश्री नाम की श्राविका का प्रकट होना भी कहा गया है।

जलमन्थन नाम का वह कल्कि राजा पूर्व-विधान के अनुसार (अर्थात् पूर्वोक्त कल्कि राजाओं के समान) ही अप्रमाण (असंख्य) दण्डों (करों) से जनपद को पीड़ित रखेगा। (उक्त) मुनिवर एवं आर्यिका जब (श्रावक के घर) अपने हाथों पर आहार लेकर भोजन करेंगे तब वह जलमन्थन अपने किंकरों को भेजकर उनका आहार छिनवा लेगा। किन्तु उसी समय भयानक वज्रपात से वह (राजा) मर जायेगा।

यतियुगल भी अनशन कर प्राणों का त्याग करेगा। यह यतियुगल एवं (पूर्वोक्त) श्रावक-श्राविका ये यो चारों ही विशिष्ट जीव स्वर्ग में जावेंगे। उस समय तक-विकराल पंचमकाल के ८९ पक्ष ही अवशिष्ट बचेंगे।

तत्पश्चात् कहा गया है कि कार्तिक-मास के कृष्णपक्ष की अमावस्या के दिन पूर्वाह्न में धर्म का क्षय हो जायेगा। उसी दिन के मध्याह्न में नृपशासन समाप्त हो जायेगा और तत्पश्चात् अपराह्न में हुताशन (अग्नि) का क्षय हो जायेगा। इस प्रकार दुःखदायी पंचमकाल का वर्णन किया गया।

घत्ता - तत्पश्चात् अति दुषम नामक छठा काल आयेगा जिसका, काल-प्रमाण कुल २१ हजार वर्ष का होगा। ॥२६॥

(२७)

Short description of Avasarpinī and Utsarpinī-Kāla.

वीसवरिस-परमाउ सुभासिउ सद्ध-ति-कर-तणु उच्च पयासिउ।
कालपवेसि एहु णिरु सिट्ठउ हत्थु तणु अंति णिकिट्ठउ।
णारय-तिरिय-गइहिँ जिउ आवइ मच्छ-कच्छ-कंदइँ आसायइ।
किण्ह-णग्ग-मल-पाव-विलित्ता घर-वावार कुलक्कम चत्ता।
५ लज्ज ण णिवसणु छुह-तिस-तत्तिय दुह-भुंजेसहिँ जण-गय-सत्तिय।
तासु अंतु पुणु होसइ जइया पलयकालु पुणु होसइ तइया।
वज्जाणिलु जलु जलणु वि रयभरु धूमरि-विस-वण्णिउ पुणु खययरु।
सत्त-सत्त-वासरु णिरु वरिसइ पलयकाल-विहि सव्वहँ दरिसइ।
इय सप्पिणिहुँ पवट्टण पच्छइ उवसप्पिणि होसइ पुणु णिच्छइ।
१० पय-धय-उच्छु-रसैं पुणु जलहरु सत्त-सत्त-दिण वरिसइ सुहयरु।
बाहत्तरि-जुयलैं हरि रक्खइ गिरि विचरहिँ जे ते जि पयक्खइ।
णिग्गमे वि अवर इंति अणेयइँ णर-तिरिक्ख-तिवि-विगय-विवेयइँ।
सक्कर-सरिस जि महिय भक्खइँ अणुहुंजहि दुक्खु ण पिक्खइँ।
वीयउ छट्ठउ एण विहाणैं कालु हवेसइ तासु पमाणैं।
१५ पंचमकालु पुणु वि पइसेसइँ तासु माणु तसु समु जिणु भासइँ।

घत्ता -

एक्क सहस सेसम्मि थक्कइँ होसहिँ कुलयरइँ।
पुणु तुरियइँ कालम्मि चउबीस जि तित्थेसरइँ।।२७।।

♣

(२७)

षट्कालों का रोचक वर्णन

उस छठे काल के प्रवेश करते ही उसमें (मनुष्यों की) उत्कृष्ट (अधिकाधिक) आयु २० वर्ष की कही गयी है तथा उनके शरीर की (अधिकाधिक) ऊँचाई ३।। हाथ प्रकाशित की गयी है। किन्तु छठे काल के निकृष्ट अन्तिम चरण में शरीर की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण ही रह जायगी। उस काल में नरकगति एवं तिर्यञ्चगति से जीव (लौट-लौट कर) आयेंगे। लोग मछलियों, कछुओं एवं कन्दों का भोजन करेंगे। वे कृष्ण लेश्यावाले, नग्न, पाप-रूपी मैल से मलिन, घर-व्यापार (भोजनादि बनाने की प्रक्रिया) से दूर, कुलक्रम के त्यागी, निर्लज्ज एवं वस्त्र-विहीन रहकर भूख-प्यास से सताये हुए रहेंगे। वे शक्तिहीन रहकर (निरन्तर) दुःख भोगते रहेंगे।

जब उस छठे काल का अन्त हो जायेगा तब फिर प्रलयकाल होगा। उसमें वज्र, अनिल (वायु), जल, अग्नि, रज (धूलि) - भार धूम और क्षयकारी विष की वर्षा के होने का वर्णन किया गया है। इन (पूर्वोक्त पदार्थों) की ७ - ७ दिनों तक क्रमशः वर्षा होगी। प्रलयकाल की यह विधि सभी को दिखाई देगी।

इस अवसर्पिणीकाल के प्रवर्त्तन के पश्चात् निश्चय से ही उत्सर्पिणी-काल आयेगा। उस समय दूध, घी, इक्षुरस तथा मेघजल आदि की सुखकारी वर्षा ७-७ दिनों तक होती रहेगी। इस उत्सर्पिणी काल में हरि (इन्द्र) ७२ युगलों (युगल-युगलियों) की रक्षा करेगा। वे प्रत्यक्ष ही गिरि-पर्वतों पर विचरण करेंगे। कुछ समय निकल जाने पर ये युगल-युगलियां तो रहेंगे ही, इनके अतिरिक्त अन्य अनेक विवेकहीन मनुष्य एवं तिर्यंचगण अवतरित होंगे। विवेकहीन होने के कारण वे मिट्टी को शर्करा के समान खायेंगे, फिर भी उसमें सुखानुभव करेंगे, दुःख का लेशमात्र भी अनुभव नही करेंगे। यह दूसरा छठा काल भी २१००० वर्ष का होगा।

इसके बाद पुनः पंचम काल का प्रवेश होगा। उसका कालप्रमाण भी जिनेन्द्रदेव के कथनानुसार पूर्वोक्त पंचमकाल के समान ही २१००० वर्षों का होगा।

घत्ता - उस पंचमकाल के १ हजार वर्ष अवशिष्ट रहने पर कुलकर होंगे और उनके बाद चतुर्थकाल २४ तीर्थेश्वर (तीर्थंकर) होंगे। ।।२७।।

(२८)

Author's own and his teacher's eulogia.

कालचक्क इम णियमणि बुज्झिवि विसय-कसाय पउत्तें उज्झिवि।
अप्पाहिउ चिंतिव्वउ लोयहिँ जिं भउ खिज्जि पवरविवेयहिँ।
छंदालंकार ईँ जि अणेयईँ तह पुणु गयमत्ताईँ जि भेयईँ।
अमुणंतें मईँ णिरुत्तउ चरमायरियहु - चरिउ-पवित्तउ।
५ तं गुणियण महु दोस खमिज्जहु अयरैं हीणाहिउ सोहिज्जहु।
णंदहु वड्ढममाण-जिस-सासणु णंदउ गुरुयणु सुतव-पयासणु
कालि-कालि देउ जि संवरसउ दुक्खु-दुहिक्खु दूरि सो णिरसउ
णंदहु राणउ णीइ-वियाणउ पय पुणु णंदउ पाउ-णिकंदउ।
सावय-वग्गु वि पुण्ण समग्गु वि[1] ....
१० घरि-घरि वीयराउ अंचिज्जउ मिच्छातम-भरु भव्वहँ खिज्जउ।
मुणि जसकित्तिहु सिस्स गुणाचर खेमचंदु-हरिसेणु तवायर।
मुणि तहँ पाल्ह बंसुए णंदहु तिण्णि वि पावहु भारु णिकंदहु।
देवराय-संघाहिव-णंदणु हरिसिघु बुहयण-कुल-आणंदणु।
पोमावइ -कुल-कमल दिवायरु सो वि सुणंदउ एत्थु जसायरु।
१५ जस्स घरि रइधू बुहु जायउ देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ।
चरिउ एहु णंदउ चिरु भूयलि पाढिज्जंतु पवट्टइ इह कलि।

घत्ता -

इहु परियणु वुत्तउ सुजस पवित्तउ जा कणयायलु सूर-ससि।
जावहिँ महिमंडलु दिवि आहंडलु णंदउ तावहिँ सजस वसि।।२८।।

---

१. इसके आगे का चरण त्रुटित है।

(२८)

कवि-प्रशस्ति

इस प्रकार कालचक्र को अपने मन में समझ-बूझकर तथा प्रयत्नपूर्वक विषय-कषायों को छोड़कर सभी लोगों को आत्मा का हित-चिन्तन करना चाहिए जिससे कि परम-विवेक से भव का क्षय हो जाय। (ग्रन्थकार अपनी लघुता प्रकट करता हुआ तथा क्षमायाचना पूर्वक सभी की समृद्धि की कामना करता हुआ कहता है कि -) अनेक छन्द, अलंकार तथा गण मात्रादि के भेदों को समझे बिना ही मैंने अन्तिम श्रुतकेवलि आचार्य भद्रबाहु के इस चरित को प्रकट करने में उनका प्रयोग किया है। तद्विषयक उन दोषों को क्षमा करें और वर्णन में हीनाधिकता का शोधन कर लें।

श्रीवर्धमान-जिन का शासन नन्दित रहे। सुतप को प्रकाशित करनेवाले गुरुजन भी नन्दित रहें। समय-समय पर देवगण वर्षा करते रहें। दुर्भिक्ष के दुःख दूर से ही नष्ट होते रहें। नीति का विज्ञाता तथा पाप - अनीति का नाशक राजा नन्दित रहे। प्रजाजन आनन्द को प्राप्त होवें। श्रावकवर्ग भी सम्पूर्ण - समग्रता को प्राप्त करता रहे (- - - - - - - -) घर - घर में वीतरागदेव की पूजा होती रहे, जिससे भव्यजनों का मिथ्यात्व रूपी पाप-तम का भार नष्ट हो जाय।

मुनि यशःकीर्ति के गुणाकर एवं तपस्वी शिष्य खेमचन्द्र और हरिषेण मुनि तथा पाल्ह ब्रह्म भी नन्दित रहें और वे तीनों सभी के पाप - भार को नाश करने वाले होवें।

संघाधिप देवराज के नन्दन तथा पद्मावती कुलरूपी कमल के लिए दिवाकर के समान और बुधजनों के कुल को आनन्दित करने वाले वे यशस्वी हरिसिंह भी नन्दित रहें। जिनके घर में देव, शास्त्र एवं गुरुचरणों में अनुराग करनेवाले रइधू बुध उत्पन्न हुए। प्रस्तुत काव्य भी भूतल पर चिरकाल तक नन्दित रहे और इस कलिकाल में भी उसके पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति बनी रहे।

घत्ता - इस प्रकार सुयश से पवित्र परिजनों का यहाँ वर्णन किया। जब तक कनकाचल है, जब तक सूर्य - चन्द्र हैं , जब तक यह महिमण्डल है और जब तक आखण्डल (इन्द्र) है, तब तक सुयश के वश होकर वे सभी तथा यह रचना नन्दित रहे।

परिशिष्ट : १

भद्रबाहुकथानकम्

अथास्ति विषये कान्ते पौण्ड्रवर्धननामनि ।
कोटीमतं पुरं पूर्व देवकोट्टं च सांप्रतम् ॥१॥

तत्र पद्मरथो राजा नताशेषनरेश्वरः ।
बभूव तन्मता देवी पद्मश्री रतिवल्लभा ॥२॥

अस्यैव भूपतेरासीत् सोमशर्माभिधो द्विजः ।
रूपयौवन संयुक्ता सोमश्री तत्प्रिया प्रिया ॥३॥

कुर्वाणः सर्वबन्धूनां भद्रं भद्राशयो यत : ।
भद्रबाहुस्ततः ख्यातो बभूव तनयोऽनयोः ॥४॥

भद्रबाहुः समुञ्जः सन् बहुभिर्ब्रह्मचारिभिः ।
देवकोट्टपुरान्तेऽसौ रममाणो वितिष्ठते ॥५॥

एवं हि तिष्ठताऽनेन रममाणेन तत्पुरे ।
कुमारैर्बहुभिः सार्धमनया क्रीडया यथा ॥६॥

एकस्य विहितो वट्टो वट्टकस्योपरि द्रुतम् ।
त्रयोदशामुना तेषु चतुर्दश निधापिताः ॥७॥

अत्रान्तरे महामानो वर्धमानः सुरस्तुतः ।
निर्वाणमगमद् वीरो हतकर्मकदम्बकः ॥८॥

गोवर्धनश्चतुर्थो ऽ सावाचतुर्दश पूर्विणाम् ।
निर्मलीकृतसर्वाशो ज्ञानचन्द्रकरोत्करैः ॥९॥

ऊर्जयन्तं गिरिं नेमिं स्तोतुकामो महातपाः ।
विहरन् क्वापि संप्राप कोटीनगरमुद्ध्वजम् ॥१०॥

भद्रबाहुकुमारं च स दृष्ट्वा नगरे पुनः ।
उपर्युपरि कुर्वाणं ताश्चतुर्दशवट्टकान् ॥११॥

पूर्वोक्तपूर्विणां मध्ये पञ्चमः श्रुतकेवली ।
समस्तपूर्वधारी च नानर्द्धिगणभाजनः ॥१२।

देवदानवलोकार्च्यो भद्रबाहुरयं वटुः ।
स्तोकैरेव दिनैर्नूनं भविष्यति तपोनिधिः ॥१३॥

गोवर्धनो विधायेममादेशं विधिपूर्वकम् ।
भद्रबाहुवटुं स्वान्ते चकार पितृवाक्यतः ॥१४॥

गोवर्धनमुनिः क्षिप्रं नानाशास्त्रार्थकोविदम् ।
चकार विधिवत् तत्र भद्रबाहुकुमारकम् ॥१५॥

ततः स्वजनकं प्राप्य दृष्ट्वाऽमु विधिपूर्वकम् ।
आजगाम मुनेः पार्श्वं भद्रबाहुर्वटुः पुनः ॥१६॥

महावैराग्यसंपन्नो ज्ञाननिष्णातबुद्धिकः ।
गोवर्धनसमीपेऽरं भद्रबाहुस्तपोऽग्रहीत् ॥१७॥

ततः स्तोकेन कालेन समस्तश्रुतपारगः ।
गोवर्धनप्रसादेन भद्रबाहुरभून्मुनिः ॥१८॥

श्रुतं समाप्तिमायातमिति सद्भक्तिनोदितम् ।
भद्रबाहुः प्रभातेऽसौ कायोत्सर्गेण तस्थिवान् ॥१९॥

देवासुरनरैरेत्य भक्तिनिर्भरमानसैः ।
भद्रबाहुरयं योगी पूजितो बहुपूजया ॥२०॥

अथ धर्मोपदेशेन समस्तगणपालकः ।
बभूवासौ सदाचारः श्रुतसागरपारगः ॥२१॥

नानाविधं तपः कृत्वा गोवर्धनगुरुस्तदा ।
सुरलोकं जगामाशु देवीगीतमनोहरम् ॥२२॥

अवन्तीविषयोद्भूतश्रीमदुज्जयनीपुरी ।
आसीन्मनोहरी वापी सौधापणसरोवरैः ॥२३॥

श्रीमदुज्जयिनीपार्श्वलग्नसिप्रानदीतटे ।
बभूवोपवनं रम्यं नानातरुकदम्बकैः ॥२४॥

चतुर्विधेन संघेन महता परिवारितः ।
इदं वनं परिप्राप भद्रबाहुर्महामुनिः ॥२५॥

तत्काले तत्पुरि श्रीमांश्चन्द्रगुप्तो नराधिपः ।
सम्यग्दर्शनसंपन्नो बभूव श्रावको महान् ॥२६॥

कनत्कनकसद्वर्णा विद्युत्पुञ्जसमप्रभा ।
अभवत् तन्महादेवी सुप्रभा नाम विश्रुता ॥२७॥

अन्यदाऽनुक्रमेणायं भिक्षार्थं गृहतो गृहम् ।
भद्रबाहुर्महायोगी विवेश स्थिरमानसः ॥२८॥

गत्वा मन्थरगामिन्या प्रविष्टो यत्र मन्दिरे ।
भद्रबाहुमुनिस्तत्र जनः कोऽपि न विद्यते ॥२९॥

केवलं विद्यते तत्र चोलिकान्तर्गतः शिशुः ।
तेनोदितो मुनिः क्षिप्रं गच्छ त्वं भगवन्नितः ॥३०॥

श्रुत्वा शिशुदितं तत्र दध्यादेवं स्वचेतसि ।
भद्रबाहुमुनिर्धीरो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥३१॥

ईदृशं वचनं तत्र बालस्य श्रूयते तदा ।
तदा द्वादशवर्षाणि मण्डलेऽत्र न वर्षणम् ॥३२॥

चिन्तयित्वा चिरं योगी भोजनातिपराङ्मुखः ।
ततो विस्मितचेतस्को जगाम जिनमन्दिरम् ॥३३॥

तत्रापराह्णवेलायां कृत्वाऽवश्यकसत्क्रियाम् ।
संघस्यासौ समस्तस्य जगादैवं पुरो गुरुः ॥३४॥

एतस्मिन् विषये नूनमनावृष्टिर्भविष्यति ।
तथा द्वादशवर्षाणि दुर्भिक्षं च दुरुत्तरम् ॥३५॥

अयं देशो जनाकीर्णो धनधान्यसमन्वितः ।
शून्यो भविष्यति क्षिप्रं नृपतस्करलुण्टनैः ॥३६॥

अहमत्रैव तिष्ठामि क्षीणमायुर्ममाधुना ।
भवन्तः साधवो यात लवणाब्धिसमीपताम् ॥३७॥

भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः ।
अस्यैव योगिनः पार्श्वे दधौ जैनेश्वरं तपः ॥३८॥

चन्द्रगुप्तिमुनिः शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम् ।
सर्वसंघाधिपो जातो विसषाचार्यसंज्ञकः ॥३९॥

अनेन सह संघोऽपि समस्तो गुरुवाक्यतः ।
दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाटविषयं ययौ ॥४०॥

रामिल्लःस्थूलवृद्धोऽपि भद्राचार्यस्त्रयोऽप्यमी ।
स्वसंघसमुदायेन सिन्धवादिविषयं ययुः ॥४१॥

भद्रबाहुमुनिर्धीरो भयसप्तकवर्जितः ।
पम्पाक्षुधाश्रमं तीव्रं जिगाय सहसोत्थितम् ॥४२॥

प्राप्य भाद्रपदं देशं श्रीमदुज्ञयिनीभवम् ।
चकारानशनं धीरः स दिनानि बहून्यलम् ॥४३॥

आराधनां समाराध्य विधिना स चतुर्विधाम् ।
समाधिमरणं प्राप्य भद्रबाहुर्दिवं ययौ ॥४४॥

सुभिक्षे सति संजाते सर्वसंघसमन्वितः ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं सम्यक्प्रपाल्य च ॥४५॥

भद्रबाहुगुरोः शिष्यो विशाखाचार्यनामकः ।
मध्यदेशं स संप्राप दक्षिणापथदेशतः ॥४६॥

रामिल्लः स्थविरो योगी भद्राचार्योऽप्यमी त्रयः।
ये सिन्धुविषये याताः काले दुर्भिक्षनामनि ॥४७॥

पानान्नभोजनैर्हीने काले लोकस्य भीषणे।
आगत्य सहसा प्रोचुरिदं ते जनसंनिधौ ॥४८॥

वैदेशिकजनैर्द्वाःस्थैः कृतकोलाहलस्वनैः ।
पितापुत्रादयो लोका भोक्तुमन्नं न लेभिरे ॥४९॥

लोको निजकुटुम्बेन बुभुक्षाग्रस्तचेतसः ।
साधित्वान्नमाबालं तद्भयान्निशि वल्भते ॥५०॥

भवन्तोऽपि समादाय निशिपात्राणि मद्गृहात्।
नूनं कृत्वाऽन्नमेतेषु गत्वा देशिकतो भयात् ॥५१॥

स्वश्रावकगृहे पूते भूयो विश्रब्धमानसाः ।
साधवो हि दिने जाते कुरुध्वं भोजनं पुनः ॥५२॥

तल्लोकवचनैरिष्टैर्भोजनं प्रीतमानसैः ।
अनेन विधिनाऽऽचार्यैः प्रतिपन्नमशेषतः ॥५३॥

अन्यदैको मुनिः कोऽपि निर्ग्रन्थः क्षीणविग्रहः।
भिक्षापात्रं करे कृत्वा विवेश श्रावकगृहम् ॥५४॥
तत्रैका श्राविका मुग्धाऽभिनवा गुर्विणी तदा।
अन्धकारे मुनिं दृष्ट्वा तत्र सा गर्भमागतम् ॥५५॥

तद्दर्शनभयात् तस्याः स गर्भः पतितो द्रुतम् ।
दृष्ट्वाऽमुं श्रावकाः प्राप्य यतीशानिदमूचिरे ॥५६॥

विनष्टः साधवः कालः प्रायश्चित्तं विधाय च।
काले हि सुस्थतां प्राप्ते भूयस्तपसि तिष्ठत ॥५७॥

यावन्न शोभनः कालो जायते साधवः स्फुटम्।
तावच्च वामहस्तेन पुरः कृत्वाऽर्धफालकम् ॥५८॥

भिक्षापात्रं समादाय दक्षिणेन करेण च ।
गृहीत्वा नक्तमाहारं कुरुध्वं भोजनं दिने ॥५९॥

श्रावकाणां वचः श्रुत्वा तदानीं यतिभिः पुनः।
तदुक्तं सकलं शीघ्रं प्रतिपन्नं मनःप्रियम् ॥६०॥

एवं कृते सति क्षिप्रं काले सुस्थत्वमागते ।
सुखीभूतजनव्राते दैन्यभावपरिच्युते ॥६१॥

रामिल्लस्थविरःस्थूलभद्राचार्याः स्वंसाधुभिः।
आहूय सकलं संघमित्थमूचुःपरस्परम् ॥६२॥

हित्वाऽर्धफालकं तूर्णं मुनयः प्रीतमानसः ।
निर्ग्रन्थरूपतां सारामाश्रयध्वं विमुक्तये ॥६३॥

श्रुत्वा तद्वचनं सारं मोक्षावाप्तिफलप्रदम् ।
दधुर्निर्ग्रन्थतां केचिन्मुक्तिलालसचेतसः ॥६४॥

रामिल्लः स्थविरः स्थूलभद्राचार्यस्त्रयोऽप्यमी।
महावैराग्यसम्पन्ना विशाखाचार्यमाययुः ॥६५॥

त्यक्त्वाऽर्धकर्पटं सद्यः संसारात् त्रस्तमानसाः।
नैर्ग्रन्थ्यं हि तपः कृत्वा मुनिरूपं दधुस्त्रयः ॥६६॥

इष्टं न यैर्गुरोर्वाक्यं संसारार्णवतारकम् ।
जिनस्थविरकल्पं च विधाय द्विविधं भुवि ॥६७॥

अर्धफालकसंयुक्तमज्ञातपरमार्थकैः।
तैरिदं कल्पितं तीर्थं कातरैः शक्तिवर्जितैः ॥६८॥

सौराष्ट्रविषये दिव्ये विद्यते वलभी पुरी ।
वप्रवादी नृपोऽस्यां च मिथ्यादर्शनदूषितः ॥६९॥
बभूव तन्महादेवी स्वामिनी नाम विश्रुता ।
अर्धफालकयुक्तानां सेयं भक्ता तपस्विनाम् ॥७०॥

अन्यदाऽयं नृपस्तिष्ठन् गवाक्षे सौधगोचरे ।
स्वामिन्या प्रियया सार्धं पश्यति स्वपुरश्रियम् ।।७१।।

तावन्माध्याह्नवेलायां अर्धफालकसंघकः ।
भिक्षानिमित्तमायातो भूपतेरस्य मन्दिरम् ।।७२।।

दृष्ट्वार्धफालकं संघं कौतुकव्याप्तमानसः।
महादेवीमिमा प्राह महीपालपुरस्सरम् ।।७३।।

अर्धफालकसंघस्ते महादेवि न शोभनः ।
न चायं वस्त्रसंवीतो न नग्नः सविडम्बनः ।।७४।।

ततोऽन्यस्मिन् दिने जाते चार्धफालकसंघकः ।
नगरान्तिकमायातः कौतुकार्थं कलस्वनः ।।७५।।

दृष्ट्वाऽमुं भूपतिः संघं बभाण वचसा हि सः ।
हित्वा तान्यर्धफालानि निर्ग्रन्थत्व त्वमाश्रयः ।।७६।।

यदा निर्ग्रन्थता नेष्टा नृपवाक्येन तैरिमे ।
तदा महीभृता प्रोक्ता भूयोऽप्याश्चर्यमीयुषा ।।७७।।

यदि निर्ग्रन्थतारूपं ग्रहीतुं नैव शक्नुथ ।
ततोऽर्धफालकं हित्वा स्वविडम्बनकारणम् ।।७८।।

ऋजुवस्त्रेण चाच्छाद्य स्वशरीरं तपस्विनः ।
तिष्ठत प्रीतचेतस्का मद्वाक्येन महीतले ।।७९।।

लाटानां प्रीतिचित्तानां ततस्तद्दिवसं प्रति ।
बभूव काम्बलं तीर्थं वप्रवादनृपाज्ञया ।।८०।।

ततः कम्बलिकातीर्थान्नून सावलिपत्तने ।
दक्षिणापथदेशस्थे जातो यापनसंघकः ।।८१।।

।।इति श्रीभद्रबाहुकथानकमिदम्।।

[हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोष (१०वीं सदी)से]

कथानक सं. १३१]

परिशिष्टः २

चाणक्यमुनिकथानकम्

पुरेऽस्ति पाटलीपुत्रे नन्दो नाम महीपतिः ।
सुव्रता तन्महादेवी विषाणदललोचना ॥१॥

कविः सुबन्धुनामा च शकटाख्यस्त्रयोऽप्यमी ।
समस्तलोकविख्याता भूपतेरस्य मन्त्रिणः ॥२॥

अस्मिन्नेव पुरे चासीत् कपिलो नाम माहनः ।
तद्भार्या देविला नाम चाणक्यस्तत्सुतः सुधीः ॥३॥

वेदवेदाङ्गसंयुक्तः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
समस्तलोकविख्यातः समस्तजनपूजितः ॥४॥

नीलोत्पलदलश्यामा पूर्णिमाचन्द्रसन्मुखी ।
यशोमतिः प्रिया चास्य यशोव्याप्तदिगन्तरा ॥५॥

कपिलस्य स्वसा तन्वी नाम्ना बन्धुमती परा ।
विधिना कवये दत्ता मन्त्रिणे कपिलेन सा ॥६॥

प्रत्यन्तवासिभूपानां क्षोभो नन्दस्य भूभुजः ।
कविना मन्त्रिणा सर्वो यथावृत्तो निवेदितः ॥७॥

कविवाक्येन भूपालो नन्दो मन्त्रिणमब्रवीत् ।
प्रत्यन्तवासिनो भूपान् धनं दत्वा वशं कुरु ॥८॥

नरेन्द्रवाक्यतोऽनेन मन्त्रिणा कविना तदा ।
वितीर्णं लक्षमेकैकं राज्ञां प्रत्यन्तवासिनाम् ॥९॥

अन्यदा नन्दभूपालो भाण्डागारिकमेककम् ।
पप्रच्छेदं कियन्मानं विद्यते मद्गृहे धनम् ॥१०॥

नन्दवाक्यं समाकर्ण्य धनपालो जगावमुम् ।
भाण्डागारे धनं राजन्न किंचिद्विद्यते तव ॥११॥

प्रत्यन्तवासिभूपानां कविना तव मन्त्रिणा ।
नरेन्द्र दत्तमेतेषां त्वदीयं सकलं धनम् ॥१२॥

निशम्य तद्वचो राजा पुत्रदारसमन्वितम् ।
अन्धकूपे तकं वेगान्मन्त्रिणं निदधौ रुषा ॥१३॥

एकैकं सकलं तत्र शरावं भक्तसंभृतम् ।
दीयते गुणयोगेन कवये हि दिने-दिने ॥१४॥

अत्रान्तरे कविः प्राह कुटुम्बं निजमादराद् ।
अन्धकूपसमासंगदुःखसंहतमानसः ॥१५॥

वैरनिर्यातने यो हि समर्थो नन्दभूपतेः ।
स परं भोजनं भुंक्तां शरावेऽत्र सभक्तके ॥१६॥

कविवाक्यं समाकर्ण्य तत्कुटुम्बो जगाद् तम् ।
त्वमेव भोजनं भुंक्ष्व शरावे सौदनं द्रुतम् ॥१७॥

उक्तं कुटुम्बमेतेन कविनासन्नवर्तिना ।
अन्धकूपान्तरे खात्वा बिलं तत्तटगोचरम् ॥१८॥

तत्तटस्थः प्रभुञ्जानः शरावे सौदनं तदा ।
एवमुक्त्वा बिलं कृत्वा कविस्तस्थौ रुषान्वितः॥१९॥

वर्षत्रयमतिक्रान्तं तत्रस्थस्य कवेः स्फुटम् ।
जीवनं चास्य संजातं मृतमन्यत् कुटुम्बकम् ॥२०॥

किंवदन्ती तकां ज्ञात्वा कवेः कोपारुणेक्षणैः ।
प्रत्यन्तवासिभिः भूपैर्वेष्टितं नन्दपत्तनम् ॥२१॥

स्मृत्वा कवेः क्षणं राज्ञा नन्देनायमुदारधीः ।
पादयोः पातनं कृत्वा कूपादुत्तारितः पुनः ॥२२॥

क्षमापणं विधायास्य नन्देनायं प्रचोदितः ।
वरं ब्रूहि महाबुद्धे प्रसन्नोऽस्मि तव स्फुटम् ॥२३॥

नन्दस्य वचनं श्रुत्वा कविरूचे नरेश्वरम् ।
स्वहस्तेन मया द्रव्यं दातव्यं ते न चान्यतः ॥२४॥

निशम्य वचनं तस्य भूभुजा मन्त्रिणः कवेः ।
प्रतिपन्नं सभामध्ये बालवृद्धसमाकुले ॥२५॥

अन्यदा भ्रमताऽनेन कविना द्रव्यमिच्छता ।
दर्भसूचीं खनन् दृष्टश्चाणक्यश्चात्र संगतः ॥२६॥

दृष्ट्वाऽमुं कविना पृष्टाश्चाणक्यः स्वपुरः स्थितः।
भट्ट किं कारणं दर्भसूची खनसि मे वद ॥२७॥

कवेर्वचनमाकर्ण्य चाणक्यो निजगावमुम् ।
दर्भसूच्याऽनया विद्धो व्रजन् पादे सुतीक्ष्णया॥२८॥

पश्य पादमिमं भिन्नमनया रुधिरारुणम् ।
शेषतोन्मूलयाम्येतां दर्भसूचीं नरोत्तम ॥२९॥

अवाचि कविना भूयश्चाणक्यः खिन्नविग्रहः ।
खातं बहु त्वया विप्र पर्याप्तं खननेन ते ॥३०॥

कविवाक्यं समाकर्ण्य चाणक्यो निजगावमुम् ।
तदाग्रहसमुद्भूतविस्मय व्याप्तमानसः ॥३१॥

मूलं नोन्मूलते यस्य तत्किं खातं भवेद् भुवि ।
स किं हतो नरैरङ्गैश्छिद्यते यस्य नो शिरः ॥३२॥

यावन्मूलं न चाप्नोति दर्भसूच्याः कृतागसः ।
भूयो भूयः प्रबन्धेन तेन तावत् खनाम्यहम् ॥३३॥

निशम्य तद्वचः सत्यं नन्दस्य सचिवः कविः ।
दध्यौ स्वचेतसि स्पष्टं विस्मयाकुलमानसः ॥३४॥

नन्दभूपालवंशस्य समर्थस्य महीतले ।
नाशं करिष्यति क्षिप्रं एष कोऽपि महानरः ॥३५॥

चिन्तयित्वा चिरं तत्र सभामध्ये जनाकुले ।
श्लोकमेकं लिलेखेमं कविविस्मितचेतसा ॥३६॥

नरेणैकशरीरेण नयशास्त्रयुतेन च ।
व्यवसायेन युक्तेन जेतुं शक्या वसुंधरा ॥३७॥

अन्यदाऽयं विलोक्यात्र श्लोकमेकं विचक्षणः।
लिलेख निजहस्तेन चाणक्यो धीरमानसः ॥३८॥

नरेणैकशरीरेण नयशास्त्रयुतेन च ।
व्यवसायेन युक्तेन जेतुं शक्या वसुंधरा ॥३९॥

इमं लिखितमालोक्य कविः श्लोकं मनोहरम् ।
चाणक्योपरि संतुष्टश्चेतसाश्चर्यमीयुषा ॥४०॥

अन्यदा भार्यया सार्धं चाणक्योऽयं निमन्त्रितः।
कविनाश्चर्ययुक्तेन तद्गृहं स गतोऽशितुम् ॥४१॥

ततोऽपि कविना तेन चाणक्यस्य गृहाजिरे ।
दीनारा बहवः शीघ्रं निक्षिप्तास्तं परीक्षितुम् ॥४२॥

यशोमत्या गृहीतास्ते दीनाराः स्वगृहाङ्गणे ।
आदाय तान् पुरस्तुष्टा जगौ चाणक्यमादरात् ॥४३॥

ददाति कपिलां नन्दो ब्राह्मणेभ्यो मनःप्रियाम्।
तदन्तिकं परिप्राप्य गृहीत्वा गच्छतानरम् ॥४४॥

भार्यावचनमाकर्ण्य चाणक्यो निजगाद ताम् ।
त्वद्वाक्यतः प्रगृह्णामि गत्वा तां कपिलामहम् ॥४५॥

तत्संप्रधारणं श्रुत्वा कविमन्त्री कुतूहलात् ।
इदं निवेदयामास नन्दस्य प्रीतचेतसः ॥४६॥

बहुदुग्धसमायुक्तं महाराज समुज्ज्वलम् ।
गोसहस्रं प्रदेहि त्वं माहनेभ्यः सुभक्तितः ॥४७॥

कविवाक्यं समाकर्ण्य नन्दोऽपि निजगाद तम्।
गोसहस्रं ददाम्येव ब्राह्मणानानय द्रुतम् ॥४८॥

ततश्चाणक्यमाहूय नरेन्द्रवचनादरम् ।
कविर्निवेशयामास प्रधानाग्रासने तदा ॥४९॥

उपविष्टः स चाणक्यो दर्भासनकदम्बकम् ।
कुण्डिकाभिर्बृशीकाभी रुद्ध्वा तस्थौ नृपान्तिके॥५०॥

ततोऽयं कविना प्रोक्तो भट्टोनन्दो जगाविदम्।
तदर्थमासनं चैकं मुञ्च विप्राः समागताः ॥५१॥

तद्वाक्यतो विहायैकं विष्टरं स द्विजः पुनः ।
एकैकमासनं मुक्तं भूयः प्रोक्तोऽमुनेदृशम् ॥५२॥

भट्टोनन्दो वदत्येवं भवन्तं भक्तितत्परः ।
अग्रासनेऽपरो विप्रो गृहीतो भूभुजा महान् ॥५३॥

भव राज गृहाद् दूरे निर्गत्य त्वरितं द्विज ।
गत्वा बहिर्गृहद्वारे तिष्ठ त्वं सुसमाहितः ॥५४॥

निशम्य वचनं तस्य चाणक्यो रक्तलोचनः ।
जगाद कर्तिकाहस्तस्तं नरं परुषस्वनः ॥५५॥

इदं न युज्यते कर्तुं भवतो न्यायवेदिनः ।
भोजनार्थं निविष्टस्य त्वद्गृहे मन्त्रिरासनम् ॥५६॥

अर्धचन्द्रं गले दत्त्वा चाणक्योधाटितोऽमुना ।
तन्निमित्तं रुषं प्राप्य निर्गतस्तद्गृहाद्बहिः ॥५७॥

नन्दवंशक्षयं शीघ्रं विदधामि विसंशयम् ।
एवं विचिन्त्य चाणक्यो निजगाद वचः स्फुटम्॥५८॥

यदीच्छति नरः कोऽपि राज्यं निहतकण्टकम् ।
ततो मदन्तिके शीघ्रं तिष्ठतु प्रीतमानसः ॥५९॥

चाणक्यवचनं श्रुत्वा नरः कोऽपि जगाविदम्।
अहमिच्छामि भो राज्यं दीयतां मे द्रुतं प्रभो ॥६०॥

निजहस्तेन तं हस्ते समादाय त्वरान्वितः ।
चाणक्यो रोषसंपूर्णो निजगाम पुरादरम् ॥६१॥

वातवेगं समारुह्य तुरङ्गं प्रीतमानसः ।
अवाहय तकं शीघ्रं चाणक्यो निजलीलया ॥६२॥

जलदुर्गे प्रविश्यासौ वार्धिमध्ये सुधीरधीः ।
राज्यमन्वेषयंस्तस्थौ चाणक्यः कृतनिश्चयः ॥६३॥

एवं हि तिष्ठतस्तस्य नरेणैकेन वेगतः ।
प्रत्यन्तवासिभूपस्य निवेदितमिदं वचः ॥६४॥

जलदुर्गे महानेकः समुद्रजलसंभवे ।
तिष्ठति प्रीतचेतस्को नरनागः सुबुद्धिमान् ॥६५॥

प्रत्यन्तवासिभूपोऽपि निशम्यास्य वचः परम् ।
निनाय तं निजस्थानं चाणक्यं मतिशालिनम् ॥६६॥

पर्वतान्तं परिप्राप्य भूपाः प्रत्यन्तवासिनः ।
भक्तं प्रवेशयामासुर्धनं च सकलं तदा ॥६७॥

ततोऽमी नन्दभूपालं भूपैः प्रत्यन्तवासिभिः ।
उपायैर्भेदमानीतास्तस्थुस्तद्वेषमागताः ॥६८॥

प्रत्यन्तशत्रुभूपालैर्नन्दो दण्डं प्रयाचितः ।
अयं वक्ति न तं नूनं ददामि भवतां करम् ॥६९॥

ततोऽभिनन्दभृत्यानां मन्त्रभेदं विधाय च ।
निर्घाटनं छले नैषां भ्रान्तिसंभ्रान्तिचेतसाम् ॥७०॥

स्वेन नन्दं निहत्याशु सुपुरे कुसुमनामनि ।
चकार विपुलं राज्यं चाणक्यो निजबुद्धितः ॥७१॥

कृत्वा राज्यं चिरं कालं अभिषिच्यात्र तं नरम्।
श्रुत्वा जिनोचितं धर्मं हित्वा सर्वं परिग्रहम् ॥७२॥

मतिप्रधानसाध्वन्ते महावैराग्यसंयुतः ।
दीक्षां जग्राह चाणक्यो जिनेश्वरनिवेदिताम् ॥७३॥

विहरन् गतियोगेन शिष्याणां पञ्चभिः शतैः ।
वनवासं परिप्राप्य दक्षिणापथसंभवम् ॥७४॥

ततः पश्चिमदिग्भागे महाक्रौञ्चपुरस्य सः ।
चाणक्यो गोकुलस्थाने कायोत्सर्गेण तस्थिवान्॥७५॥

बभूव तत्पुरे राजा सुमित्रो नाम विश्रुतः ।
तत्प्रिया रूपसंपन्ना विनयोपपदा मतिः ॥७६॥

मन्त्री सुबन्धुनामास्य नन्दस्य मरणेन सः ।
चाणक्योपरि संक्रुध्य तस्थौ तच्छिद्रवाञ्छया ॥७७॥

ततः क्रौञ्चपुरेशस्य महासामन्तसेविनः ।
सुबन्धुर्बन्धुसंपन्नः समीपे तस्य तस्थिवान् ॥७८॥

अथ क्रौञ्चपुराधीशः श्रुत्वा मुनिसमागमम् ।
महाविभूतिसंयुक्तस्तं यतिं वन्दितुं ययौ ॥७९॥

चाणक्यादिमुनीन् नत्वा स तत्पूजां विधाय च।
महाविनयसंपन्नो विवेश निजपत्तनम् ॥८०॥

ततोऽस्तमनवेलायां यतीनां शुद्धचेतसाम् ।
साग्निं करीषमाधाय तत्समीपेऽपि रोषतः ॥८१॥

विधाय स्वेन देहेन पापराशेरुपार्जनम् ।
महाक्रोधपरीताङ्गः सुबन्धुर्नरकं ययौ ॥८२॥

चाणक्याख्यो मुनिस्तत्र शिष्यपञ्चशतैः सह ।
पादोपगमनं कृत्वा शुक्लध्यानमुपेयिवान् ॥८३॥

उपसर्गं सहित्वेमं सुबन्धुविहितं तदा ।
समाधिमरणं प्राप्य चाणक्यः सिद्धिमीयिवान् ॥८४॥

ततः पश्चिमदिग्भागे दिव्यक्रौञ्चपुरस्य सा ।
निषद्यका मुनेरस्य वन्द्यतेऽद्यापि साधुभिः ॥८५।

[हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोष (१०वी सदी) से]
कथानक सं. १४३]

परिशिष्टः ३

उपवासफलवर्णनं अर्थात् भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त-कथा

अत्रैवार्यखण्डे पुण्ड्रवर्धनदेशे कोटिकनगरे राजा पद्मधरो राज्ञी पद्मश्रीः पुरोहितः सोमशर्मा ब्राह्मणी सोमश्रीः। तस्याः पुत्रोऽभूत्तदुत्पत्तिलग्नं विशोध्य सोमशर्मा वसतौ ध्वजमुद्भावितवान् मत्पुत्रो जिनदर्शनमान्यो भविष्यतीति। ततस्तं भद्रबाहुनाम्ना वर्धयितुं लग्नः, सप्तवर्षानन्तरं मौञ्जीबन्धनं कृत्वा वेदमध्यापयितुं च। एकदा भद्रबाहुर्बटुकैः सह नगराद्बहिर्बटुक्रीडार्थं ययौ। तत्र वट्टस्योपरि वट्टधारणे केनचित् द्वौ, केनचित् त्रय उपर्युपरि धृताः। भद्रबाहुना त्रयोदश धृताः। तदवसरे जम्बूस्वामिमोक्षगतेरनन्तरं विष्णु-नन्दिमित्र-अपराजित-गोवर्धन-भद्रबाहुनामानः पञ्च श्रुतकेवलिनो भविष्यन्तीति जिनागमसूत्रं चतुर्थः केवली गोवर्धननामानेकसहस्रयतिभिर्विहरंस्तत्रागत्य तं लुलोके। सोऽष्टाङ्गनिमित्तं वेत्ति। तं विलोक्यायं पश्चिमश्रुतकेवली भविष्यतीति बुबुधे। तत्समुदायालोकनात्सर्वे बटुकाः पलायिताः। स आगत्य गोवर्धनं ननाम। मुनिना पृष्टस्त्वं किमाख्यः, कस्य पुत्र इति। सोऽवदत् पुरोहितसोमशर्मणः पुत्रोऽहं भद्रबाहुनामा। पुनर्मुनिनोक्तं मत्समीपेऽध्येष्यसे। तेन ओमिति भणिते तद्धस्तं धृत्वा स एव तत्पितुः गृहं ययौ। तं विलोक्य सोमशर्मासनादुत्थाय संमुखमागत्य मुकुलितकर आसनमदादपृच्छच्च-स्वामिन्, किमित्यागमनम्। मुनिर्बभाण तव पुत्रोऽयं मत्समीपेऽध्येष्ये इत्युक्तवान्। त्वं भणसि चेदध्यापयिष्यामि। द्विजोऽब्रूतायं जैन-दर्शनोपकारक एव स्यादित्युत्पन्नमुहूर्तगुणो विद्यते, सोऽन्यथा किं भवेदयं भवद्भ्यो दत्तो यज्ञानन्ति तत्कुर्वन्त्विति तेन समर्पितः। तदा माता यतिपादयोर्लग्नाऽस्य दीक्षां मा प्रयच्छन्तु। मुनिरुवाचाध्याप्य तवान्तिकं प्रस्थापयामीति श्रद्धेहि भगिनि। ततस्तं नीत्वा मुनिर्ग्रासावासादिना श्रावकैः समाधानं कारयित्वा सकलशास्त्राण्यध्यापितवान्। स च सकलदर्शनानां सारासारतां विबुध्य दीक्षां ययाचे। गुरुरवोचत् स्वं नगरं गत्वा तत्र पाण्डित्यं प्रकाश्य मातापितरावभ्युपगमय्यागच्छेतिविससर्ज। स च गत्वा मातापितरौ प्रणम्य तदग्रे गुरोर्गुणप्रशंसां चकार। द्वितीय दिने पद्मधरराजस्य भवनद्वारे पत्रमवलम्ब्य द्विजादिवादिनः सर्वान् जिगाय, तत्र जैनमतं प्रकाश्य मातापितरावभ्युपगमय्य गत्वा दीक्षितः। श्रुतकेवलीभूतमाचार्यं कृत्वा गोवर्धनः संन्यासेन दिवं गतः। भद्रबाहुस्वामी स्वामिभक्तः तपस्वियुक्तो विहरन् स्थितः।

तत्रान्या कथा। तथाहि - पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दो बन्धुख्य-सुबन्धुका-विशकटालाख्यचतुर्भिमन्त्रिभिः राज्यं कु र्वन् तस्थौ । एकदा नन्दस्योपरि प्रत्यन्तवासिनः संभूयागत्य देशसीम्नि तस्थुः। शकटालेन नृपो विज्ञप्तः- प्रत्यन्त-वासिनः समागताः, किं क्रियते। नन्दोऽब्रूत त्वमेवात्र दक्षस्त्वद्भणितं करोमि। शकटालोऽवोचच्छत्रवो बहवो दानेनोपशान्तिं नेयाः, युद्धस्यानवसर इति। राज्ञोक्तं त्वत्कृतमेव प्रमाणम् द्रव्यं प्रयच्छ। ततः शकटालो द्रव्यं दत्त्वा तान् व्याघोटितवान्। अन्यदा राजा भाण्डागारं द्रष्टुमियाय। द्रव्यमपश्यन् क्व गतं द्रव्यमित्यपृच्छत्। भाण्डागारिकोऽब्रूत शकटालोऽरिभ्योऽदत्त। ततः कुपितेन राज्ञा सकुटुम्बः शकटालो भूमिगृहे निक्षिप्तः। सरावप्रवेशमात्रद्वारेण स्तोकमोदनं जलं प्रतिदिनं दापयति नरेशः। तमोदनं जलं च दृष्ट्वा शकटालोऽब्रूत कुटुम्बमध्ये यो नन्दवंशं निर्वंशं कर्तुं शक्नोति स इममोदनं जलं च पिबति। स एव स्थितोऽन्ये मृताः।

इतः पुनः प्रत्यन्तवासिनां बाधायां नन्दः शकटालं सस्मार उक्तवांश्च शकटालवंशे कोऽपि विद्यत इति। कश्चिदाहान्नं जलं च कोऽपि गृह्णाति। ततस्तमाकृष्य परिधानं दत्त्वा उक्तवानरीनुपशान्तिं नयेति। स केनाप्युपायेनोपशान्तिं निनाय। राज्ञा मन्त्रिपदं गृहाणेत्युक्ते शकटालस्तदुल्लङ्घ्य सत्कारगृहाध्यक्षतां जग्राह। एकदा पुरबाह्येऽटन् दर्भसूचीं खनन्तं चाणक्यद्विजं लुलोके। तदनु तमभिवन्द्योक्तवान् किं करोषि । चाणक्योऽब्रूत विद्धेऽहमनया, ततो निर्मूलमुन्मूल्य शोषयित्वा दग्ध्वा प्रवाहयिष्यामि। शकटालोऽमन्यत अयं नन्दनाशे समर्थ इति तं प्रार्थयति स्म त्वयाग्रासने प्रतिदिनं भोक्तव्यमिति। तेनाभ्युपगतम्। ततः शकटालो महादरेण तं भोजयति। एकदाऽध्यक्षस्तस्य स्थानचलनं चकार। चाणक्योऽवदत् स्थानचलनं किमिति विहितम्। अध्यक्ष उवाच राज्ञो नियमोऽयमग्रासनमन्यस्मै दातव्यमिति। ततो मध्यमासनेऽपि भोक्तुं लग्नः। ततोऽप्यन्ते उपवेशितः। स तत्रापि भुङ्क्ते, कोपं न करोति। अन्यदा भोक्तुं प्रविशन् चाणक्योऽध्यक्षेण निवारिको राज्ञा तव भोजनं निषिद्धमहं किं करोमि। ततश्चाणक्यः कुपितः पुरान्निःसरन्नवदद्यो नन्दराज्यार्थी स मत्पृष्ठं लगतु। ततश्चन्द्रगुप्ताख्यः क्षत्रियोऽतिनिस्वः किं नष्टमिति लग्नः। स प्रत्यन्तवासिनां मिलित्वोपायेन नन्दं निर्मूलयित्वा चन्द्रगुप्तं राजानं चकार। स राज्यं विधाय स्वापत्यबिन्दुसाराय स्वपदं दत्त्वा चाणक्येन दीक्षितः। चाणक्यभट्टारकस्य इत ऊर्ध्वं भिन्ना कथाराधनायां ज्ञातव्या। बिन्दुसारोऽपि स्वतनयाशोकाय स्वपदं वितीर्य दीक्षितः। अशोकस्यापत्यं कुनालोऽजनि। स बालः पठन् यदा तस्थौ तदाशोकःप्रत्यन्तवासिनां उपरि जगाम। पुरे व्यवस्थितप्रधानान्तिकं राजादेशं प्रास्थापयत्।

कथम्। उपाध्यायाय शालिकूरं च मसिं च दत्त्वा कुमारमध्या पयतामिति। स च वाचकेनान्यथा वाचितः। ततः उपाध्यायं शालिकूरं मसिं च भोजयित्वा कुमारस्य लोचने उत्पाटिते। अरीन् जित्वा आगतो नृपः कुमारं वीक्ष्यातिशोकं चकार। दिनान्तरैस्तं चन्द्राननाख्यया कन्यया परिणायितवान्। तदपत्यं संप्रति-चन्द्रगुप्तोऽभूत्। तं राज्ये निधायाशोको दीक्षितः। संप्रतिचन्द्रगुप्तो राज्यं कुर्वन् तस्थौ।

एकदा तदुद्यानं कश्चिदवधिबोधमुनिरागतो वनपालात्तदागतिं ज्ञात्वा संप्रति-चन्द्रगुप्तो वन्दितुं ययौ। वन्दित्वोपविश्य धर्मश्रु तेरनन्तरं स्वातीतभवान् पृष्टवान्। मुनिः कथयति।.... तं निशम्य संप्रति-चन्द्रगुप्तो जहर्ष। तं नत्वा पुरं विवेश सुखेन तस्थौ।

एकस्या रात्रेः पश्चिमयामे षोडश स्वप्नान् ददर्श। कथम्। रवेरस्तमनम् १, कल्पद्रुमशाखाभङ्गम् २, आगच्छतो विमानस्य व्याघुटनम् ३, द्वादशशीर्ष सर्पम् ४, चन्द्रमण्डलभेदम् ५, कृष्णगजयुद्धम् ६, खद्योतम् ७, शुष्कमध्यप्रदेशतडागम् ८, धूमं ९, सिंहासनस्योपरि मर्कटम् १०, स्वर्णभाजने क्षैरीयीं भुञ्जानं श्वानम् ११, गजस्योपरि मर्कटम् १२, कचारमध्ये कमलम् १३, मर्यादोल्लंघितमुदधिम् १४, तरुणवृषभैर्युक्तं रथम् १५, तरुणवृषभारूढान् क्षत्रियांश्च १६, ततोऽपरदिनेऽनेकदेशान् परिभ्रमन् संघेन सह भद्रबाहुः स्वामी आगत्य तत्पुरं चर्यार्थं प्रविष्टः श्रावकगृहे सर्वर्षीन् दत्त्वा स्वयमेकस्मिन् गृहे तस्थौ। तत्रात्यव्यक्तो बालोऽवदत् 'वोलह वोलह' इति। आचार्योऽपृच्छत् केती वरिस इति। बालो 'बारा वरिस' इत्यब्रूत। ततो अलाभेन सूरिरुद्यानं ययौ। संप्रति-चन्द्रगुप्तस्तदागमनं विज्ञाय सपरिजनो वन्दितुं ययौ। वन्दित्वा स्वप्नफलमप्राक्षीत्। मुनिरब्रवीत् अग्रे दुःखमकालवर्तनं त्वया स्वप्ने दृष्टम्। तथाहि दिनपत्यस्तमनं सकलवस्तुप्रकाशकपरमागमस्यास्तमनं सूचयति १। सुरद्रुमशाखाभङ्गोऽद्यास्तमन (?) प्रभृतिक्षत्रियाणां राज्यं विहाय तपोऽभावं बोधयति २। आगच्छतो विमानस्य व्याघुटनम् अद्यप्रभृत्यत्र सुरचारणादीनाम् आगमनाभावं ब्रूते३। द्वादशशीर्षः सर्पो द्वादशवर्षाणि दुर्भिक्षं वदति ४। चन्द्रमण्डलभेदो जैनदर्शने संघादिभेदं निरूपयति।५। कृष्णगजयुद्धमितोऽत्राभिलषितवृष्टेरभावं गमयति ६। खद्योतः परमागमस्योपदेशमात्रावस्थानं निगदति ७। मध्यम-प्रदेशशुष्कतडागमार्यखण्डमध्यदेशे धर्मविनाशमाचष्टे ८। धूमो दुर्जनादीनामाधिक्यं भणति ९। सिंहासनस्थो मर्कटोऽकुलीनस्य राज्यं प्रकाशयति १०। सुवर्णभाजने पायसं भुञ्जानः श्वा राजसभायं कुलिङ्गपूज्यतां द्योतयति ११। गजस्योपरि स्थितो मर्कटो राजपुत्राणामकुलीनसेवां बोधयति १२। कचारस्थं कमलं रागादियुक्ते तपोविधानं मनयति १३। मर्यादाच्युतउदधिः षष्ठांशातिक्रमेण

राज्ञां सिद्धादायग्रहणमाविर्भावयति १४। तरुणवृषभयुक्तो रथो बालानां तपोविधानं वृद्धत्वे तपोऽतिचारं निश्चाययति १५। तरुणवृषभारूढाःक्षत्रियाः क्षत्रियाणां कुधर्मरतिं प्रत्याययन्ति १६।इति श्रुत्वा संप्रति-चन्द्रगुप्तः स्वपुत्रसिंहसेनाय राज्यं दत्त्वा निःक्रान्तः।

भद्रबाहुस्वामी तत्र गत्वा बालवृद्धयतीनाह्वाययति स्म, बभाषे च तान् प्रति-अहो यो यतिरत्र स्थास्यति तस्य भङ्गो भविष्यति इति निमित्तं वदति, तस्मात्सर्वैर्दक्षिणमागन्तव्यमिति। रामिल्लाचार्यः स्थूलभद्राचार्य स्थूलाचार्यस्त्रयोऽप्यतिसमर्थश्रावकवचनेन स्वसंघेन समं तस्थुः। श्रीभद्रबाहुर्द्वादशसहस्त्रयतिभिर्दक्षिणं चचाल, महाटव्यां स्वाध्यायं ग्रहीतुं निशिहियापूर्वकं कांचिद् गुहां विवेश। तत्रात्रैव निषद्येत्याकाशवाचं शुश्राव। ततो निजमल्पायुर्विबुध्य स्वशिष्यमेकादशाङ्गधारिणं विशाखाचार्यं संघाधारं कृत्वा तेन संघं विससर्ज । संप्रति चन्द्रगुप्तः प्रस्थाप्यमानोऽपि द्वादशवर्षाणि गुरुपादावाराधनीयावित्यागमश्रुतेर्न गतोऽन्ये गताः। स्वामी संन्यासं जग्राहाराधनामाराधयन् तस्थौ। संप्रतिचन्द्रगुप्तो मुनिरुपवासं कुर्वन् तत्र तस्थौ। तदा स्वामिना भणितो हे मुनेऽस्मद्दर्शने कान्तारचर्यामार्गोऽस्ति। ततस्त्वं कतिपयपादपान्तिकं चर्यार्थं याहि। गुरुवचन मनुल्लङ्घनीयमन्यत्रायुक्तादिति वचनाज्जगाम। तदा तच्चित्तपरीक्षणार्थ यक्षो स्वयमदृशीभूत्वा सुवर्णवलयालंकृतहस्तगृहीतचटुकेनसूपसर्पिरादिमिश्रं शाल्योदनं दर्शयति स्म। मुनिरस्य ग्रहणमयुक्तमित्यलाभे गतः। गुरोरन्ते प्रत्याख्यानं गृहीत्वा स्वरूपं निरूपितवान्। गुरुस्तत्पुण्यमाहात्म्यं विबुध्य भद्रं कृतम् इत्युवाच। अपरस्मिन् दिनेऽन्यत्र ययौ। तत्र रसवतीभाण्डानि हेममयं भाजनमुदनकलशादिकं ददर्श। अलाभेनागतो गुरोः स्वरूप निरूपितवान् । स च भद्रं भद्रमिति बभाण। अन्यस्मिन् दिनेऽन्यत्र ययौ। तत्रैकैव स्त्री स्थापयति स्म। तदा त्वमेकाहमेक इति जनापवादभयेन स्थातुमनुचितमिति भणित्वालाभे निर्जगाम। अन्येद्युरन्यत्राट। तत्र तत्कृतं नगरमपश्यत्। तत्रैकस्मिन् गृहे चर्या कृत्वागतो गुरोःस्वरूपं कथितवान्। स बभाण समीचीनं कृतम्। एवं स यथाभिलाषं तत्र चर्या कृत्वागत्य स्वामिनः शुश्रूषां कुर्वन् वसति स्म। स्वामी कतिपयदिनैर्दिवं गतः। तच्छरीरमुच्चैः प्रदेशे शिलायाम् उपरि निधाय तत्पादौ गुहाभित्तौ विलिख्याराधयन् वसति स्म। विशाखाचार्यादयश्चोलदेशे सुखेन तस्थुः। इतः पाटलिपुत्रे ये स्थिता रामिल्लादयस्तत्र महादुर्भिक्षं जातम् तथापि श्रावका ऋषिभ्योऽतिविशिष्टमन्नं ददति। एकदा चर्यां कृत्वागमनावसरे रङ्कैः कस्यचिदृषेरुदरं विपाटयोदनो भक्षितः। ऋषेरुपद्रवं वीक्ष्य

श्रावकैराचार्य भणिता ऋषयो रात्रौ पात्राणि गृहीत्वा गृहमागच्छन्तु, तान्यशनेन भृत्वा वयं प्रयच्छामो वसतौ निधाय योग्यकाले द्वारं दत्त्वा गवाक्षप्रकाशेन परस्परं हस्तनिक्षेपणं कृत्वा चर्यां न कुर्वन्त्विति, तदभ्युपगम्य तथा प्रवर्तमाने सत्येकस्यां रात्रौ दीर्घकायं वेतालाकृतिं पिच्छकमण्डलुपाणिं कुक्कुरादिभयेन गृहीतदण्डं यतिं विलोक्य कस्याश्चिद् गर्भिण्याः भयेन गर्भपातोऽभूत्। तमनर्थं विलोक्योपासकैर्भणितं श्वेतं कम्बलं घटिकास्वरूपं लिङ्गं कटिप्रदेशं च झम्पितं यथा भवति तथा स्कन्धे निक्षिप्य गृहं गच्छन्त्वन्यथानर्थ इति। तदप्यभ्युपगतम्। तथा प्रवर्तमाना अर्धकर्पटितीर्थाभिधा जाताः। एवं ते सुखेन तथैव तस्थुः।

इतो द्वादशवर्षान्तरं दुर्भिक्षं गतमिदानीं विहरिष्याम इति विशाखाचार्याः पुनरुत्तरापथमागच्छन् गुरुनिषद्यावन्दनार्थं तां गुहामवापुः। तावत्तत्रातिष्ठद्यो गुरुपादावाराधयन् संप्रति-चन्द्रगुप्तो मुनिर्द्वितीयलोचाभावे प्रलम्बमानजटाभारः संघस्य संमुखमाट ववन्दे संघम्। अत्रायं कन्दाद्याहारेण स्थित इति न केनापि प्रतिवन्दितः। संघो गुरोर्निषद्याक्रियां चक्रे उपवासं च। द्वितीयाह्ने पारणानिमित्तं कमपि ग्रामं गच्छन्नाचार्यः संप्रति-चन्द्रगुप्तेन निवारितः स्वामिन्, पारणां कृत्वा गन्तव्यमिति। समीपे ग्रामादेरभावात् क्व पारणा भविष्यतीति गणी बभाण। सा चिन्ता न कर्तव्येति संप्रति-चन्द्रगुप्त उवाच। ततो मध्याह्ने कौतुकेन संघस्तत्प्रदर्शितमार्गेण चर्यार्थं चचाल। पुरो नगरं लुलोके, विवेश, बहुभिः श्रावकैर्महोत्साहेन स्थापिता ऋषयः। सर्वेऽपि नैरन्तर्यानन्तरं गुहामाययुः। कश्चिद् ब्रह्मचारी तत्र कमण्डलुं विसस्मार। तामानेतुं डुढौके। तन्नगरं न लुलोक इति विस्मयं जगाम, गवेषयन् झाडे तामपश्यत्।गृहीत्वागत्याचार्यस्य स्वरूपमकथयत्। ततः सूरिः संप्रति-चन्द्रगुप्तस्य पुण्येन तत्तदैव भवतीत्यवगम्य तं प्रशंसयामास। तस्य लोचं कृत्वा प्रायश्चित्तमदत्त, स्वयमप्यसंयतदत्तमाहारं भुक्तवानीति संघेन प्रायश्चितं जग्राह।

इतो दुर्भिक्षापसारे रामिल्लाचार्य स्थूलभद्राचार्यावालोचयामासतुः। स्थूलाचार्यो-ऽतिवृद्धः स्वयमालोचितवांस्तत्संघस्य कम्बलादिकं त्यक्तं न प्रतिभासत इति नालोचयति। पुनः पुनर्भणन्नाचार्यो रात्रावेकान्ते हतः। स्थूलाचार्यो दिवं गतः इति सर्वैः संभूय संस्कारितः। तदृषयस्तथैव तस्थुः।तत्रागता विशाखाचार्यादयः प्रतिवन्दना न कुर्वन्तीति तदा तैः केवली भुङ्क्ते, स्त्रीनिर्वाणमस्तीत्यादि विभिन्नं मतं कृतम्। तैः पाठिता कस्यचिद्राज्ञः पुत्री स्वामिनी। सा सुराष्ट्रा [ष्ट्र] देशे वलभीपुरेशवप्रपादाय दत्ता। सा तस्यातिवल्लभा जाता। तया स्वगुरवस्तत्रानायिताः। तेषामागमने राज्ञा समर्घपथं ययौ। राजा तान् विलोक्योक्तवान्- देवि, त्वदीया गुरवः कीदृशा न परिपूर्ण परहिता नापि नग्राः

इति। उभयप्रकारयो मध्ये कमपि प्रकारं स्वीकुर्वन्तु चेत्पुरं प्रविशन्तु, नोचेद्यान्त्वित्युक्ते तैः श्वेतः साटको वेष्टितस्ततः स्वामिनीसंज्ञया श्वेतपटा बभूवुः। स्वामिन्याः पुत्रो जक्खलदेवी श्वेतपटैः पाठिता। सा करहाटपुरेशभूपालस्यातिप्रिया जज्ञे। सापि स्वगुरून् स्वनिकटमानयामास। तेषामागतौ तया राजा विज्ञप्तो मदीया गुरवः समागताः त्वयार्धपथं निर्गन्तव्यमिति। तदुपरोधेन निर्गतो वटतले स्थितान् दण्डकम्बल युतानालोक्य भूपाल उवाच देवि, त्वदीया गुरवो गोपालवेषधारिणो यापनीया इति। राजा तानवज्ञाय पुरं विवेश। तेषां तयोक्तं भवादृशामत्र वर्तनं नास्तीति निर्ग्रन्थैः भवितव्यम्। ततस्ते स्वमतावलम्बेनैव जाल्पसंघाभिधानेन निर्ग्रन्थाजनिषपतेति। संप्रति-चन्द्रगुप्तोऽतिविशिष्टतपो विधाय संन्यासेन दिवं जगाम।

[श्री रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोष (१२वीं सदी के आसपास) से]

कथा सं. ३८

♣

---

१. धनाढ्येभ्यः ।

परिशिष्टः ४

चाणक्क कहाणगं

गोल्लविसए चणयगामो, तत्थ चणगो माहणो सो य सावओ। तस्स घरे साहू ठिया। पुत्तो से जाओ सह ढाढाहिं। साहूणं पाएसु पाडिओ। कहियं च-राया भविस्सइ त्ति। 'या दोग्गइं चाइस्सइं त्ति दंता घट्टा। पुणो वि आयरियाणं कहियं- किं किज्जउ ? एत्ताहे वि बिंबंतरिओ राया भविस्सइ। उम्मुक्कबालभावेण चोद्दस विज्जाठाणाणि आगमियाणि-

अंगाइं चउरो वेया, मीमांसा नायवित्थरो।
पुराणं धम्मसत्थं च ठाणा चोद्दस आहिया।।१।।

सिक्खा वागरणं चेव, निरुत्तं छंद जोइसं।
कप्पो य अवरो होइ, छच्च अंगा विआहिया।।२।।

सो सावओ संतुट्ठो। एगाओ दरिद्दभद्दमाहणकुलाओ भज्जा परिणीआ। अन्नया भाइविवाहे सा माइघरं गया। तीसे य भगिणीओ अन्नेसिं खद्धादाणियाणं[1] दिन्नाओ। ताओ अलंकियभूसियाओ आगयाओ। सव्वो परियणो ताहि समं संलवइ, आयरं च करेइ। सा एगागिणी अवगीया अच्छइ। अद्दितीय जाया। घरं आगया। दिट्ठा य ससोगा चाणक्केण, पुच्छिया सोगकारणा न जंपए, केवलं अंसुधारिहिं सिंचंती कवोले नोससइ दीहं। ताहे निब्बंधेण लग्गो। कहियं सगग्गयवाणीए जहट्ठियं। चिंतियं च तेण -अहो। अवमाणणाहेउ निद्धणत्तणं जेण माइघरे वि एवं परिभवो ? अहवा-

अलियं पि जणो धणइत्तमस्स सयणत्तणं पयासेइ।
परमत्थबंधकेण वि लज्जिज्जइ हीणविहवेण।।३।।

तहा-

कज्जेण विणा जेहो, अत्थविहूणाण गउरवं लोए।
पडिवन्ने निव्वहणं, कुणन्ति जे ते जए विरला।।४।।

ता धणं उवज्जिणामि केणइ उवाएण, नंदो पाडलिपुत्ते दियाईणं धणं देई, तत्थ वच्चामि। तओ गंतूण कत्तियपुन्निमाए पुव्वन्नत्थे आसणे पढमे निसन्नो। तं च तस्स पल्लीवइ

---

१. धनाढ्येभ्यः ।

राउलस्स सया ठविज्जइ। सिद्ध पुत्तो य नंदेण समं तत्थ आगओ भणइ-एस बंभणो नंदवंसस्स छायं अक्कमिऊण ट्ठिओ। भणिओ दासीए-भयवं! बीए आसणे निवेसाहि। 'एवं होउ' विइए आसणे कुंडियं ठवेइ, एवं तइए दंडयं, चउत्थे गणेत्तियं पंचमे जन्नोवइयं। 'धट्ठो' ति बिच्छूढो। पदोसमावन्नो भणइ-

कोशेन भृत्यैश्च निबद्धमूलं, पुत्रैश्च मित्रैश्च विवृद्धशाखम्।
उत्पाट्य नंदं परिवर्त्तयामि, महाद्रुमं वायुरिवोग्रवेगः।।५।।

निग्गओ मग्गइ पुरिसं। सुयं चणेण -बिंबंतरिओ राया होहामि त्ति। नंदस्स मोरपोसगा तेसिं गामे गओ परिवायलिंगेण। तेसिं च मयहरधूयाए चंदपियणम्मि दोहलो। सो समुयाणिंतो गओ। पुच्छंति। सो भणइ-मम दारगं देह तो णं पाएमि चंदं। पडिसुणंति। पडमंडवो कओ, तद्दिवसं पुन्निमा,मज्झे छिड्डं कयं, मज्झण्हगए चंदे सव्वरसालूहिं दव्वेहिं संजोइत्ता खीरस्स थालं भरियं सद्दाविया पेच्छइ पिवइ य। उवरि पुरिसो उच्छाडेइ। अवणीए डोहले कालक्कमेण पुत्तो जाओ। चंद्रगुत्तो से नामं कयं। सो वि ताव संवड्ढइ। चाणक्को वि धाउविलाणि [१]मग्गइ। सो य दारएहि समं रमइ। रायनीईए विभासा। चाणक्को या पढिएइ। पेच्छइ। तेण वि मग्गिओ- अम्ह वि दिज्जउ। भणइ-गावीओ लएहिं। या मारिज्जा कोइ। भणइ-वीरभोज्जा पुहई। नायं- जहा विन्नाणं पि से अत्थि। पुच्छिओ-कस्स? त्ति। दारगेहिं कहियं- परिव्वायगदुत्तो एस। अहं सो परिब्बायगो, जामुजा ते रायाणं करेमि। सो तेण समं पलाइओ। लोगो मेलिओ।

पाडलिपुत्तं रोहियं। नंदेण भग्गो परिव्वायगो पलाणो। अस्सेहिं पच्छओ लग्गा पुरिसा। चंदगुत्तं पउमिणीसंडे छुभेत्ता रयओ जाओ चाणक्को नंदसंतिएण जच्चवल्हीगकिसोरगएणमासवारेण पुच्छिओ- कहिं चंदगुत्तो? भणइ-एस पउमसरे पविट्ठि चिट्ठइ। सो आसबारेण दिट्ठो। तओ णेण घोडगो चाणक्कस्स अप्पिओ, खडगं मुक्कं। जाव निगुडिओ, जलोयरणट्ठयाए। कंचुगं मेल्लइ ताव णेण खग्गं घेत्तूण दुहा कओ। पच्छा चंदगुत्तो हक्कारिय चडाविओ। पुणो पलाणो। पुच्छिओ णेण चंदगुत्तो जं बेलं सि सिट्ठो तं वेलं किं चिंतयं तए? तेण भणियं-हंदि! एवं चेव सोहणं भवइ, अज्जो चेव जाणइ त्ति। तओ णेण जाणियं- जोग्गो, न एस विपरिणमइ। पच्छा चंदउत्तो छुहाइओ। चाणक्को तं ठवेत्ता भत्तस्स अइगओ, वीहेइ- मा एत्थ नज्जेज्जामो। डोडस्स[२] बहि निग्गयस्य दहिकूरं गहाय आगओ। जिमिओ दारगो। अन्नत्थ समुयाणितो गामे परिभमइ। एगम्मि गिहे थेरीए पुत्तभंडाणं विलेवी[४] पवड्ढिया[३]। एगेण हत्थो मज्झे छूढो। सो दड्ढो रोवइ। ताए भन्नइध चाणक्कमंगल[५]। भेत्तुं पि न याणासि। तेण पुच्छिया भणइ- पासाणि पढमं घेप्पं

---

१ भक्षामटन् । २ विप्रस्य । ३. महेरी -एक प्रकार का खाद्य । ४. परोसा । ५. यहाँ मगल शब्द समानार्थवाचक है।

ति तं परिभाविय गओ हिमवंतकूडं। तत्थ पव्वयओ राया तेण समं मेत्ती कया-भणइ-नंदरज्जं समं समेण विभज्जयामो।

पडिवन्नं च तेण। ओयविउमाढ़ता। एगत्थ नयरं न पडइ। पविट्ठो तिरंडी वत्थूणि जोएइ। इदं कुमारियाओ दिट्ठाओ। तासिं तेएण न पडइ। मायाए नीणावियाओ। गहियं नयरं। पाडलिपुत्तं तओ रोहियं।

नंदी धम्मदारं मग्गइ। एगेण रहेण जं तरसि तं नीणेहि। दो भज्जाओ एगा कन्ना दव्वं च नीणेइ। कन्ना निग्गच्छंती पुणो चंगत्तं पलोएइ। नंदेण भणियं- जाहि त्ति। गया। ताए विलग्गंतीए चंदगुत्तरहे नव आरगा भग्गा। 'अमंगलं' ति निवारिया तेण। तिदंडी भणइ-मा निवारेहि। नव पुरिसजुगाणि तुज्झवंसी होही। पडिवन्नं। राउलमइगया। दो भागा कयं रज्जं। तत्थ एगा विसकन्ना आसि,तत्थ पव्वयगस्स इच्छा जाया। सा तस्स दिन्ना। अग्गिपरियंचणेण विसपरिगओ मरिउमारद्धो। भणइ- वयंस। मरिज्जइ। चंदगुत्तो 'संभामिं' त्ति विवसिओ। चाणक्केण भिउडी कया इमं नीतिं सरंतेण-

तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम्।
अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात्स हन्यते।।६।।

ठिओ चंदगुत्तो। दो वि रज्जाणि तस्स जायाणि। नंदमणुस्सा य चोरियाए जीवंति। देसं अभिद्दवंति। चाणक्को अन्नं उग्गतरं चोरग्गाहं मग्गइ। गओ नयरबाहिरियं। दिट्ठो तत्थ नलदायो कुविंदो। पुत्तयडसणामरिसिओ खणिऊण बिलं जलणपज्जालणेण मूलाओ उच्छायंतो मक्कोडए। तओ 'सोहणो एस चोरग्गाहो' त्ति वाहराविओ।। सम्माणिऊण य दिर्ण्णं तस्साऽऽरक्खं। तेण चोरो भत्तदाणाइणाकओवयारा वीसत्था सव्वे सकुडुंबा वावाइया। जायं निक्कंटयं रज्जं। कोसनिमित्तं च चाणक्केण महिड्डियकोडुंबिएहिं सद्धिं आढत्तं मज्जपाणं। वायावेइ होलं। उट्ठिऊण य तेसिं उत्फेसणत्थं गाएइ एयं पणच्चंतो गाइयं-

दो मज्झ धाउरत्ताइं, कंचणकुंडिया निदंडं च।
राया वि मे वसवत्ती,एत्थ वि ता मे होलं वाएहि।।७।।

इमं सोऊण अन्नो असहमाणो कस्सइ अपयडियपुव्वं नियरिद्धिं पयडंतो नच्चिउमारद्धो। जओ-

कुवियस्स आउरस्स य, वसणं पत्तस्स रागरत्तस्स।
मत्तस्स मरंतस्स य, सब्भावा पायडा होंति।।८।।

पढियं च तेण -

गयपोययस्स मत्तस्स, उप्पइयस्स य जोयणसहस्सं।
पए पए सयसहस्सं, एत्थ वि ता मे होलं वाएहि।।९।।

अन्नो भणइ -

तिल आढयस्स वुत्तस्स, निष्फन्नस्स बहुसइयस्स।
तिले तिले सयसहस्सं, एत्थ वि ता मे होलं वाएहि।।१०।।

अन्नो भणइ -

णवपाउसम्मि पुन्नाए, गिरिनदियाए सिग्धवेगाए।
एगाहमहियमेत्तेण, नवणीएण पालिं बंधामि।।११।।

- एत्थ वि ता मे होलं वाएहि।।

अन्नो भणइ -

जच्चाणं णवकिसोराण, तद्दिवसेण जायमेत्ताणं।
केसेहि नभं छाएमि एत्थ वि ता मे होलं वाएहि ।।१२।।

अन्नो भणइ -

दो मज्झ अत्थि रयणाइं, सालिपसूई य गद्दभीया य ।
छिन्ना छिन्ना वि सहंति, एत्थ वि ता होलं वाएहि ।।१३।।

अन्नो भणइ -

सय सुक्किल निच्चसुयंधो, भज्ज अणुव्वय णत्थि पवासो।
निरिणो य दुपंचसओ, एत्थ वि ता मे होलं वाएहि ।।१४।।

एवं नाऊण दव्वं मग्गियं जहोचियं। कोट्ठारा भरिया सालीणं,ताओ छिन्ना छिन्ना पुणो जायंति। आसा एगदिवसजाया मग्गिया एगदेवसियं नवणीयं। सुवन्नुप्पायणत्थं च चाणक्केण जंतपासयाकया। कई भणंति-वरदिन्नया। तओ एगो दक्खो पुरिसो सिक्खाविओ। दीणारथालं भरियं सो भणइ-जइ ममं कोइ जिणइ, तो थालं गिण्हउ। अह अगं जिणामि तो एगं दीणारं गिण्हामि। तस्स इच्छाए पासा पडंति। अओ न तीरए जिणिउं। जह सो न जिप्पइ एवं मणुसलंभो वि।

[उत्तराध्ययन : सुखबोधाटीका से]

परिशिष्ट : ४

शब्दकोष

(ध्यातव्य - सन्दर्भ में कडवक एवं पंक्ति संख्या प्रदर्शित है)

अ

अइपबलु = अतिप्रबल ६।२
अकाल = अकाल, दुष्काल २५।९
अकुलीण = अकुलीन १२।४
अग्गइ = आगे २४।८
अग्गउ = आगे २०।९
अग्गासण = अग्रासन, पहला आसन ८।८
अग्गिल = अग्गिल नामक श्रावक २६।४
अच्छइ = निवास करता है, रहता है ३।१
अच्छरिउ = आश्चर्य १९।११
अछिण्ण = अछिन्न, नियमित ७।७
अज्ज = आज ६। ७
अज्जखेत्त = आर्यक्षेत्र १।३
अज्झाय = अध्यापन २।१०
अज्जिय = आर्यिका २६।६
अजुत्तु = अयुक्त १५।२; १५।११
अट्ठंग = अष्टांग १।१: २।३
अडवि = अटवी १३।८;१४।६;१४।१४
अण्ण = अन्य ५।१
अण्णाए = अन्याय २५।४
अणत्थ = अनर्थ १८।९
अणसण = अनशन १४। ९, २६। ७
अणिट्ठ = अनिष्ट १०।७
अणुणइ = अनुनय १८।२
अणुरत्त = अनुरक्त १२। १२, १३। १२
अणुराय = अनुराग २८।१५
अणिंद = अनिन्द्य २।१
अत्थवण = अस्तवन ११।५
अतुच्छ = अतुच्छ, असाधारण २०।१४
अतुल = अनुपम १०।१३
अतंद = अतन्द्र १।२०
अद्धा = अर्ध, आधा २४।११
अद्ध = अर्ध २३।३
अदुच्छ = निष्पाप ३।२
अप्पमाण = अप्रमाण ५।४
अप्पाण = अपना ४।६
अपसत्थ = अप्रशस्त २३।५
अप्पाहिउ = आत्महित २८।२
अब्भच्छिउ = सादर निमन्त्रित किया ८।८
अभक्ख = अभक्ष्य १७।६
अभद्द = अभद्र १७।२४
अभिवाय = अभिवादन १५। ७
अभंगह = अभंग २०।९
अम्मावसि = अमावस २६।१०
अयरें = अचिर, तत्काल ९।१५
अरि = शत्रु ६।५
अरियण = शत्रुजन ७।३
अल्ल = आर्द्र, गीला ५।१४
अलाह = अलाभ १३।६
अवगण्ण = अवगणना २४।२
अवमाण = अपमान २६।५
अवरण्ह = अपराह्न २६।१२
अवसरि = अवसर ३।७
अवहरिउ = अपहृत किया गया ९।२
अवहि = अवधि (-ज्ञान) ११। ५,२१। १२
अविरय = अविरत २०।११

असणु = अशन (भोजन) २०।११
असहंतें = सहन नहीं करते हुए २१। १२
असहिँ = खाने लगे १७।६
असिउ = खा लिया १७।२१
असेसु = अशेष १५।७
असोउ = अशोक (मगध सम्राट्) ९।१३
असंक = अशंकित १७।१९
अहणिसु = अहर्निश २१।११, २२।४
अहय = अखण्डित, सभी, शीघ्र २।५
अहि = सर्प १०।६, ११।१०
अहिराण = अभिधान, नामके २४।६

आ

आउ = आया ८।९
आउसि = आयुष्मांन् ३।२
आगमणु = आगमन ११।९
आढत्तईं = २२। २
आणइ = लाने लगे १८।१३
आणहु = ले आओ १८।१
आणा = आज्ञा १९।१३
आणंद = आनन्द ३।१४; १०।१
आदण्ण = ग्रहण २०।११
आयम = आगम (शास्त्र) ४।१०
आयरिउ = आचार्य १६।१०
आयरियउ = आचरण किया १८।४
आया = आया,आ पहुँचा १४।१५
अराहिय = आराधना की, स्मरण किया २१।१४
आरूढ = सवार १२।८
आलोयणु = आलोचना २०।१०
आवइ-हरणु = आपत्ति को हरण करने वाला ३।१४
अवयसय = सैकड़ों आपत्तियों को २१।२
आविवि = आकर ४।२
आवंत = आ+या+शतृ १७।१८
आसणि = आसन पर २०।१४
आसाय = आस्वादन २७।३
आसु = शीघ्र २।८
आहार = आहार (पवित्र भोजन) ३।११
आहास = आ+भाष् ३।७
आहंडलु = इन्द्र २८।१८
अंचिज्ञ = अर्चना, पूजा २८।१०
अंतराय = अन्तराय, विघ्न १९।२
अंतिमिल्लु = अन्तिम २६।१

इ

इक्कु = एक १५।१८
इत्थु = यहाँ १४।२; २३।१५
इम = इस प्रकार ११।१७; ८।७
इय = इतना, इस प्रकार २५।९
इह = यही पर, इस संसार में १। ३; ११। १२
इहु = यह १। १३; ३। ५
इंति = आगमन, आते है २७।१२
इंदविमाणु = इन्द्रविमान १०।६

उ

उक्कंठिउ = उत्कण्ठित १०।२
उज्झिउ = २८।१
उत्तउ = कहा ३।१५
उद्धर = उद् + हृ १। १५; ३। ५
उद्दाल = आ + छिद् = छीनकर ९।९
उप्पण्ण = उत्पन्न ९।१२
उप्परि = ऊपर ९।१३
उयउ = उदित हुआ १९।८
उयरि = उदर से, गर्भ से १।१०
उयरु = उदर, पेट १७।२०

उववास = उपाध्याय (गुरु) ९।१५
उवण्णी = उत्पन्न हुई २३।९
उवरि = ऊपर १।२३
उववास = उपवास १४।१०
उवसग्ग = उपसर्ग २१।१४
उवसप्पिणी = उत्सर्पिणी (काल) २७।९
उवसाम =उप + शयम् , शान्त करना ५। ५
उवाउ = उपाय २२।५

ए

एक्क = एक १।२२, १७।१६
एक्कु = एक २।६; २१।९
एक्केक्खर = एक-एक अक्षर २४।८
एण (एण्ह) = इस (विधि से, प्रकार से) ८।६
एत्थु = यहाँ २८।१४
एत्तहि = इतस्, यहाँ से, उसी समय २। ५; १९। ३
एयछत्तु = एकच्छत्र (-साम्राज्य वाला सम्राट्) २५।३
एय = एतत् , इसका ३। ४
एरिसु = एतादृश, ऐसा १४।२
एव = ही २४।४
एव्वहिँ = इस समय, आजकल २२।२
एसो= यह ३।६
एहु = एषा, यह १।१६; ३।९

क

कइ = कपि, बन्दर १२।८
कइपय = कतिपय ९।३
कउतुक = कौतुकपुर (नगर) १।४
कक्कि = कल्कि (राजा) २५।२
कच्छ = कछुवा २७।३
कडय = कटक (आभूषण) १५।१
कढाविउ = कृष, निकलवाया ७।१
कणयथालि = स्वर्णथाल ८।८
कणयायलुक्कचल, सुमेरु पर्वत २८।१७
कत्थ = कुत्र, कहाँ ५।११; २०।५
कत्तियमासि = कार्तिकमास २६।१०
कप्परुक्ख = कल्पवृक्ष १०।५
कम्म = कर्म १४।१३
कमल = कमल १०।११
कमंडलु = कमण्डल १८।१०
कयवय = कतिपय १३।१८
कयार = कतवार, कूड़ा, मैला १०।११
करणु = करने में ५।१६
करहाड = करहाट (नगर) २३।१०
करहु = करो ६।७
काल = काल (-चतुर्थ) २७।१७
करालें = कराल, विकराल २५।९
कराविवि = राकर २२।१
करि = करो, कीजिए २।११
करिऊण = कृ + ऊण् कृत्वा, करके ८।४
करिवर = श्रेष्ठ हाथी १०।११
करेसहिँ = करेंगे १२।५
कलंकिय = कलंकी, कल्कि राजा २५।१२
कलेवरु = कलेवर, हृदय ६।४
कसाएँ = कषायों से ५।१०
कसाय = कषाय (-क्रोधादि) ८।५
कह = कथा १।२
कहु = कहो, बताओ २।८
काइँ = किम्, क्या ८।१
कारणि = कारण २०।२
कारहरि = कारागृह में ६।९
कालचक्कु = कालचक्र (अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी) २८।१

कालपवट्टण = कालप्रवर्त्तन १८।३
कालपवेसि = काल-प्रवेश २७।२
कालरूअमराज के समान रूपवाला १८।५
कालि= समय २६।२
किउ = किया, रखा १।१८
किण्ह = कृष्ण, काला १०।७
किण्णिय = क्लिन्न, क्षीण, २०।१२
काले वर्णवाले
कित्तियवासर = कितने ही दिन १७।१५
किंपि = कोई भी, कुछ भी ५।६
किव्वउ = करो, करना, कीजिए ९।१५
कुक्कुड = कुक्कर, कुत्ता १२।६
कुडंब = कुटुम्ब, परिवार ५।१३
कुधम्म = कुधर्म १२।१२
कुल= कुल, परिवार १२।५
कुलक्कमि = कुलक्रम २७।१७
कुलक्खु = कुल - क्षय ५।१६
कुलिंग= खोटे, कृत्रिम वेषधारी १२।७
कुवि= कुछ भी १३।११
कुसला = कुशल १।१
क्खरु = अक्षर ९।१४
केण = किसके द्वारा, किसने ५।११
केणारणि = किसने अरण्य में ९।१
केरउ = (सम्बन्धार्थक) का ९।१६
केवलि = (श्रुत-) केवली ११।१
कोविय = क्रुद्ध होकर ५।१०
कोव = कोप, क्रोध ५।१३
कोस = कोष, खजाना ५।९; ५।१२
कोहधरु = क्रोध धारण करनेवाला,
क्रोधी ७।९
कंकण = आभूषण १५।१
कंकाल = कंकाल, अस्थिपंजर १७।१
कंतइखंडिय = कान्त बिछुड़ गया १७।५
कंतारभिक्ख = कान्तारभिक्षा १४।१२
कंदइँ = कन्द २७।३
कंबलधर = कम्बलधारी २२। ८

ख

खउ = क्षय २६।११
खज्जोउ =खद्योत (जुगनू) १०।८, १२।१
खण= क्षण १।११;५।५;१७।३;२४।२
खणिवि = खोदकर ८।३
खणु = २०।१०
खणंतु = खोदते हुए ७।९
खत्तिय = क्षत्रिय १०।१३
खमावणु = क्षमापन १४।५
खमाविवि = क्षमा कराकर ४।८
खमिवि = क्षमा कर ४।८
खययरु = २७।७
खलिणो = स्खलित, खाली ५।१२
खसिउ = स्खलित १८। ७
खिज्जइ = २८।२
खुल्लउ = क्षुल्लक २०।१
खेमचंद = क्षेमचन्द्र (भट्टारक) २८।११
खेवमि = व्यतीत कर रहा हूँ १४।६
खंधारूढा = स्कन्धारूढ (कन्धे
पर सवार) १०।११

ग

गउ = गया ५।८, २२।६
गउरवेण = गौरवपूर्वक १।१७
गच्छइ = गम् ५।२; २०।२
गण्णइँ = गिनी जाय; गिनें १३।११
गब्भु = गर्भ १८। ७
गयउ = गया ३।१०; ४।३
गयणयणो = गतनयन ९।१७

गयणसद्दु = गगनशब्द, आकाशवाणी १४।२
गयणि = आकाश में १।२०
गयणु = गगन, नभ १०।९
गयमलि = गतमल १३।४६
गयवाहि = बाहर जाकर २०।६
गरीस = गरिष्ठ, महान् २४।५
गासु = ग्रास १३।७
गिण्हइ = ग्रहण करने लगा ६।१२
गिण्हहु = ले लो, छीन लो २५।८
गिरा = वाणी २२।१३
गिरिवर = उच्च पर्वत २५।६
गुण = गुणस्थान २।१२
गुणल्लियउ = गुणनिधि ३।१८
गुणसेणि = गुणश्रेणी १।१३
गुणायर = गुणाकर १६।३
गुणालें = गुणाकर ४।५
गुणि = गुणवाला १५।२
गुणिल्लु = गुणवाला २।४
गुरुयणु = गुरुजन २८।६
गुरुक्कउ = महान् १३।१४
गुरुपय = गुरुपद १४।७
गुरुवयण = गुरुवचन, गुरुवाणी १४।१४
गरुसेव = गुरुसेवा १४।१०
गुहा = गुफा, कन्दरा १९।१३
गेह = घर ३।११
गोउर = गोपुर १५।१४
गोवद्धणु गोवर्द्धन(आचार्य) १।१: ४।११
गोवाल = गोपाल २३।४
गोसि = प्रभातकाल में १०।१४
गंपि = जाकर ९।८

घ

घणमाला = मेघमाला ११।१२
घय = घृत १३।११: २७।१०
घर = गृह, घर २।१२: २७।४
घरिय = घर से ४।२
घरु = घर २०।५
घल्ल = क्षिपू, फेंकना ६।९: ८।४
घोर = घोर, भयानक १६।५
घोस = घोषणा करना १४।२:२२।४;२४।८

च

चउमुहु = चतुर्मुख (नामक कल्कि राजा) २५।२
चएप्पिणु = छोड़कर १६।६
चट्टइ = चट्टुआ धरकर १५।१
चरमायरिय = अन्तिम आचार्य २८।४
चरिउ = चरित २८।४
चरिय = चरित्र १३।२
चरियाचरणु = चर्याचरण ३।१५
चलइ = चलता है, डिलता है १।१६
चाणक्क = चाणक्य ८।१;८।९;८।११
चारणमुनि = चारणमुनि (सिद्धि प्राप्त साधु) ११।७
चारिवि = चय करके, चलकर, मरकर २६।८
चालियउ =चलाया, चलायमान किया ९।१
चित्ति = चित्त में ३।१३
चिरकाल = चिरकाल ६।३
चंदगुत्ति = चन्द्रगुप्त ९।७: १०।१: ११।१: १२।१४: १४।१०: २०।६
चंदमंडल = चन्द्रमण्डल ११।११
चंदु = चन्द्रमा १।२०

चिन्त = चिन्ता, विचार २८।२
चिंताउरु = चिन्तातुर १०।१४

छ

छण्णउ = छा गया, भर गया १७।२
छद्दंसणु = षड्दर्शन ३।१३
छहरस = षड्रस १५।१
छार = क्षार, राख ८।४
छिण्ण = छिन्न, नष्ट, समाप्त ५।१२
छुह = क्षुधा ६।९: २०।१५
छंडिवि = छोड़कर ११।७
छंदालंकार = छन्दालंकार २८।३

ज

जक्खिल = जक्खिला (रानी) २३।९
जणण = पिता ४।१
जणणी = जननी ४।१
जणवउ = जनपद २५।११
जम्मण = जन्म के १।११: ३।४
जलथंमणु = जलथंभन नामक कल्कि राजा २६।१
जलु = जल ६।२
जसकित्ति = यशः कीर्ति (भट्टारक) २८।११
जसायरु = २८।१४
जाइवि = जाकर १।२२
जाएसइ = जायगा २५।१०
जाणिउ = जानो २।४
जाम = जब १।२३
जायउ = हुआ ५।१
जासि = जिसका २।६
जि = जो १।१
जिणसासण = जिनशासन १।१४
जित्तिय = जीतकर ४।६
जीवियास = जीवन की आशा १४।९
जुज्झंता = जूझते हुए ११।११
जुत्तु = युक्त, सहित २।२
जुयल = युगल २६।७
जेत्तहिं = जहाँ ३।१
जंपइ = बोला २।११
जुँजहि = जुड़ेगा, लगेगा १९।२

झ

झाएप्पिणु = ध्यान कर १६।६

ठ

ठवइ = स्थापित करता है १।२३
ठविउ = स्थापित किया,रख दिया १६।७
ठा = स्था १५।१०
ठियउ = स्थित किया, डाल दिया ६।१०

ड

डिंभ = बालक १।१८:२।४:३।१०

ढ

ढंक = ढँकना २३।१०

ण

णउ = नही १।१६
णउलु = नकुल (मौर्य सम्राट् अशोक का पुत्र) ९।१२
णग्गत्तण = नग्नत्व २१।८
णग्गा = नग्न २३।५
णयणिए = नेत्रों से ३।७
णयमग्गि = न्यायमार्ग से २५।११
णवासिय = नवासी (८९) २६।९
णहंगणि = नभांगन ११।८
णाणत्थवणु = केवलज्ञान अस्तंगत ११।४
णामु = नाम १।१७

णायरजणु = नागरजन ६।६
णाराहइ = आराधना नहीं करता १४।७
णासेसइ = नष्ट करेगा, नष्ट हो जायगा १३।८
णिइवि = देखकर २।३
णिउत्तउ = नियुक्त किया, निश्चित कर दिया ९।३
णिक्कारणि = निष्कारण २१।९
णिच्चाराहहु= नित्य आराधना करो २२।३
णिच्छिविउ = निष्छवि देखा ९।१७
णिण्णासिउ = निकाल दिया ७।२
णिमित्त = निमित्त १।१
णियघरि = निजगृह ३।१
णियबुद्धि = निज-बुद्धि ५।५
णियमण = निज-मन ११।१६: ८।५
णियमंदिरि = निज-मन्दिर, भवन ४।१
णियसत्ति = निजशक्ति ४।६
णिरवज्ञा = निरवद्य, निर्दोष २६।३
णिरारिउ = नितराम्, सदा २१।१२
णिरु = निरन्तर, अत्यन्त २।४
णिरुक्कंट्टिय = अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक १।१
णिरुत्तउ = कहा ३।१५
णिवभोज = नृपभोज ८।८
णिवसइ = रहता है ४।१२
णिवसण = वस्त्ररहित २७।५
णीइ = नीति २८।८
णीसल्लु = निःशल्य ८।४
णेवज्ञ = नैवैद्य २२।४
णंदउ = नन्दित (आन्दित) २८।१८
णंदणु = नन्दन १। १०
णंदु = नन्द (राजा) ५।१

त

तइया = तृतीय;तभी से २४।३
तक्खण = तत्क्षण २।९
तच्छ = तत्र, वहाँ २।२
तत्थ = तत्र, वहाँ ४।४
तत्तिय = त्रस्त २७।५
तरुण = तरुण, युवक १२।१२
तवलिण = तप में बलवान् २४।५
तवसा = तापस २। १
तवायर = तपाकर, तपोनिधि २८।११
तहि = उसके १।१०
तहु = उसकी, उसका १।९
तातह = पिता के ४।३
तासु = उसकी १।२
तिण्णि = २८।१२
तित्थेसर = तीर्थेश्वर २७।१७
तियलोय = त्रिलोक १६।९
तियाल = त्रिकाल २२।७
तिरिय = तिर्यञ्च २२।११
तिलहँ = तिलहन सामग्री १३।११
तिसल्लउ = तीन प्रकार की शल्य २१।९
तुच्छ = तुच्छ २४।७
तुरियइँ = चतुर्थ (काल) २७। १७
ते = वे २।५
तेण = उसने २।३: २।७

थ

थक्क = स्था, स्थित १३।१६
थूलभद्दु=स्थूलभद्र (आचार्य) १३।१५: २१।१
थूलायरियउ = स्थूलाचार्य (आचार्य) १३।१५:२१।४
थोवउ = स्तोक, थोड़ा ६।३

द

दच्छमइ = दक्षमति २१।१४
दब्भु = दर्भ ७।९
दय = दया १।१४
दाण = दान १६।१
दार = द्वार १९।१
दारुपत्ति = काष्ठ पात्र १९।२: २२।७
दिक्खिय = दीक्षित १२।१४
दिज्जहु = दीजिए ३।९
दिट्ठ = देखा १०।११
दिट्ठांत = दृष्टान्त ११।११
दिढचित्त = दृढ़चित्त ४।९
दिणम्मि = दिन में १। ११
दिणि = दिन में १।२२: ४।५: १६।४
दिय = द्विज २।८
दियं वर = दिगम्बर २। १२: २५। ६
दिवसेसरु = दिवसेश्वर, सूर्य १०।५
दिवायरु = दिवाकर २८।१४
दुच्चरिय = दुश्चरित्र २५।१३
दुज्जणयण = दुर्जनजन १२।३
दुव्वयण = दुर्वचन २१।११
दुहाल = दुखभरा, बुरी स्थिति ७।९
देवराय = देवराज (रइधू के पितामह) २८।१३
दोदह = द्वादश (वर्ष) ११।९
दंड = दण्ड, डण्डा २३।४
दंडेसइ = दण्ड देगा २५।४
दसाविज्जइ = दिखला दीजिए ३।८
दंसाविवि = दिखलाकर ४।१

ध

धण = धन-सम्पत्ति १३।११
धण्ण = धान्य १३।११
धम्मु = धर्म १२।२
धरिय = धारण कर ४।९
धरियउ = पकड़ कर २।१२
धाविवि = दौड़कर २।७
धूमरि = धूम्र २७।७

प

पउत्तु = प्र+उक्त, कहा १।१२
पउमरहु राउ = पद्मरथ नामका राजा १।५
पउंज = प्र+युज् ६।३. २५।७
पएसि = प्रदेश में २।२
पक्ख = पक्ष २६।९
पच्छइ = पश्चात्, बाद में ३।९
पच्छिमिल्लु = पाछिला, पीछे का २।४
पच्छिलु = पाछिले, पीछे के १।२
पज्जय = (मनः-) पर्यय (ज्ञान) ११।५
पडिआवंत = प्रति+आ+या+शतृ १७।१८
पडिगाहिउ = पडगाहा १५।१६
पडिच्छइ = देता था १०।३
पडिवण्णउ = स्वीकार किया. २२।६
पढमणरय = प्रथम नरक २५। १०
पढमि = पढूँगा २। ११
पढवमि = पढ़ाऊँगा ३।३
पढावियाइँ = पढ़ा दिया ३।१२
पढेसि = पढ़ेगा २।१०
पणविवि = प्रणाम कर ३।२
पत्तापत्तहँ = पात्र-अपात्र का ७।६
पत्तालंवणु = पात्रता का अवलम्बन कर ४।५
पमाणिय = प्रमाणित ३।१३
पयक्ख = प्रत्यक्ष २१।१६
पयडमि = प्रकट करता हूँ १।२

पयडिय = प्रकटित ३।८
पयाउ = प्रताप ११५
परमाउसु =परमायु, उत्कृष्ट आयु २४।११
परलच्छी = पराई लक्ष्मी ११।७
परायण = निष्णात २।३
परिणी = ब्याह दी गयी २३।१: २३।१०
परिथक्कउ = ठहर गया २।६
पारियणु = परिजन २८।१७
परियाणिय = जान लिया ३। १३
पलाण = पलायन कर गये २।५
पवयणंग = प्रवचनांग २४।६
पसण्ण = प्रसन्न ३।१०
पसाउ = कृपा २।११
पसुत्तइँ = सो रहा था। १०।४
पंसंसिउ = प्रशंसित ४।४
पहगच्छहु = मार्ग में जाइये ;विहार कीजिए १९।१०
पहवंत = प्रभावाले १०।८
पहावण = प्रभावना २३।७
पहिट्ठा = प्रसन्न १९।१२
पाडलिपुर=पाटलिपुरा,पटना १:२०।१३:२६।१
पाढय = पढ़ा दिये गये है ३।१५
पाढिज्जंतु = पढ़ा-पढ़ाया जाय २८।१६
पाणिपत्ति = पाणिपात्री बनकर २१।८
पायच्छित्तु = प्रायश्चित्त २१।५
पायडिय = प्रकट करन वाले १।७
पायस = खीर १०।१०
पाल्ह वंभु = ब्रह्मचारी पाल्ह २८।१२
पालमि = पातला हूँ, चलाता हूँ ७।६
पालेसइ = पालन करेगा २५।११
पावण = पावन, पवित्र १।१४
पासंड = पाखण्ड, बनावटी २३।१३
पिययम = प्रियतम २३।३
पियरजण = पितृजन ४।४
पुच्छिउ = पूछा २।७: ३।२
पुज्जेज्जा = आदर किया जायगा १२।७
पुण्णसत्ति = पुण्यशक्ति १।३
पुणरवि = पुनरपि १२।१३
पुणु = पुनः १।२
पुत्ति = पुत्री २३।९
पुप्फयंत = पुष्पदन्ताचार्य २४।६
पुरोह = पुरोहित १।६
पुहई = पृथिवी २५।४
पोत्थहिँ = पोथियों में; पुस्तकों में २४।७
पोमसिरि = पद्मश्री १।६
पोमावइ = पद्मावती २८।१४
पोसेसहिँ = पालन-पोषण करेंगे २५।१३
पोहिउ = पुरोहित ३।१
पंचमकालि = पंचमकाल १०।८: २४।९: २६।९
पुंगमु = पुगंव, श्रेष्ठ १४।४
पुंज = ढेर, समूह १२।९

फ

फग्गुसिरी = फल्गुश्री नाम की श्राविका २६।४
फलु = फल ११।५
फाडिउ = फाड़ डाला १७।२०
फुप्फूवतउ = फुफकारता हुआ १०।६
फुरंता = स्फुरायमान १०।१०

ब

बहु = बहुत, अधिक ४।४
बालवहस = बालवृषभ १०।१२
बालु = बालक २।३
बाहत्तरि = बहत्तर २७।११

बीभच्छ = बीभत्स १८।७
बुद्धि = बुद्धि २४।७
बुल्लाविय = बुलाकर २३।११
बोल्लियउ = बोला ६।६
बंभण = ब्राह्मण ३।२

भ

भट्ट = भट्ट (आचार्य) २०।९
भणहि = कहो २।८
भणिवि = कहकर १।७
भद्दकुमारो = भद्रकुमार(भद्रबाहु) ४।३
भद्दबाहु = भद्रबाहु (श्रुतकेवली) १।२: १।१९: २।६. २।८: ४।९: १३।२ १४।९
भमणुक्कंठिउ = भ्रमण के लिए उत्कण्ठित १५।४
भारु = भार २८।१२
भव्व = भव्य ३।१२
भव्वु = भव्य १५।८
भवियव्वु = भवितव्यता ३।६
भावइ = भावे, इच्छानुसार ३।९
भावि = भविष्य में २।६.३।५.२१।४
भास = प्रतिभाषित
भिक्खार्हिं = भिक्षा के निमित १४।१४
भुयवली = भूतबली (आचार्य) २४।६
भुंजहि = भोजन करो २५।७
भूदेउ = भूदेव (पुरोहित) ३। ४
भूयलि = भूतल पर ४।७
भेय = भेद ३।१३

म

मग्गिउ = माँगा ३।१४
मच्छ = मत्स्य २७।३
मज्झण्हे = मध्याह्न में २६।११
मज्झु = मेरा १।१३
मणि = मन मे ३। १४
मरिवि = मर कर ४।११
मल = मैल २७।४
महड्ढिहिं = महर्द्धिकों के द्वारा १२।८
महव्वय = महाव्रत ४।९
महाभड्डु = महाभट ४।७
महि = पृथिवी पर २।१
महु = मुझे, मेरे लिए २।८: ३।८
महुच्छउ = महोत्सव २०।१४
महुच्छें = महोत्सव २३।७
मार = कामदेव १३।१
मारेवउ = मार डाला गया २५।८
मिच्छाइट्ठि = मिथ्यादृष्टि १८।४
मिच्छातम = मिथ्यातम २८।१०
मुउउ = मर गया होगा ६।१०
मुणिणाह = मुनिनाथ २।२
मुणिवरु = मुनिवर ३।१
मुणिदु = मुनीन्द्र २।१
मुणीसर = मुनीश्वर १।१
मुणेहु = जानो १।१६
मोऍं = मोदपूर्वक, हर्षपूर्वक ४।२
मति = मन्त्री ५।१३. २५।५
मद = मन्द ६।१२
मुंडिय = मुण्डित २३।४

र

रइधू = कवि का नाम २८।१५
रमइ = विचरण करता है १।२३
रयभरु = धूल भरा हुआ २७।७
रयणि = रात्रि १९।८
रवि = रवि, सूर्य ११।५
रसोइ = रसवती, भोजनशाला १५।५

राइएण = प्रसन्न चित्तवाले २।७
राणी = रानी (स्वामिनी) २३।१२
रामिल्लायरियउ = रामिल्लाचार्य १३।१५
रिसिपय = ऋषिपद २।७
रिसिव = ऋषिवर १।२१
रूव = रूप १।६

ल

ललिय = ललित २२।१३
लवण = लवण १३।११
लाहु = लाभ २।६
लिहिय = लिखित १६।८
लिहेप्पिणु = लिखकर २२।७
लेविय = लेकर १९।५
लोहु = लोभ २५।२
लोहंधु = लोभान्ध २५।१३

व

वट्टहँ = बंटे के (ऊपर), गोली के (ऊपर) १।२३
वट्टउ = बंटा (गोली) १।२३
वट्ठिय = स्थापित १।५
वड्ढहि = बढ़ने लगा १।२०
वच्छ = वत्स ३।१५
वज्जग्गि = वज्राग्नि ११।१३
वज्जाणिल = वज्रानिल २७।७
वण्णिउ = वर्णित २७।७
वणयर = वनेचर १०।९
वयणु = वचन ३। १०
वरिसाणंतरि = वर्षान्तर १९।३
वरिसेसइ = बरसेगा ११।१३
वलहीपुर = बलभीपुर (नगर) २३।१
वलियसंघ = वलियसंघ-यापनीय संघ २४।३
वसह = वृषभ १२।१०
वारह = बारह (१२) २। २
वावार = व्यापार,कार्य २७।४
वासरु = वासर, दिन २७।८
वासु = वास, निवास १९।५
वाहु = हाथ १।१९
वाहुडि = तिरछा, उल्टा १०।६: १९।४
विक्खाय = विख्यात ४।१०
विगय = विगत २७।१२
विग्यमलु = विगतमल १८।१०
विच्छिण्ण = आच्छादित १०।९
विचरहिं = विचरते हैं २७।११
विजब्भासु = विद्याभ्यास २२।१
विजावाएँ = विद्या-वाद में ४।६
विजयंदिय = विजयेन्द्रिय :जितेन्द्रिय १९।५
विट्ठर = विष्टर, सिंहासन १०।९
विण्णि = दोनों ४।७
विणउ = विनय ४।४: २२।५
वित्थारिय = विस्तारित ४।६
विप्प = विप्र १।१२. ७।७
विमला = विमल, निर्मल १।२
वियलिहि = विगलित, भयभीत २१।१५
विलित्ता = विलिप्त २७।४
विवेय = विवेक २७।१२
विसाहणंदि = विशाखानन्दी आचार्य १४।४: १९।३: २०।१३. २४।५
विहरहु = विहार करो, विचरण करो १८।११
विहरंतउ = विहार(भ्रमण) करते हुए २।१: ४।१२
विहल = विफल ८।१

वीयउ = दूसरा २७।१४
वीस = बीस २७।१
वेएँ = वेगपूर्वक ४।२
वंढेसइ = बढ़ायगा २६।६
वंदेप्पिणु = वन्दना कर २१।२
विंतरु = व्यन्तरदेव २१।१३
विंदुसार = चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) का पुत्र ९।११

स

सइच्छइँ = स्वेच्छया १।२३: २४।४
सक्कर = शर्करा, शक्कर २७।१३
सरवा = शकोरा, चुक्कड़ ५।१४
सग्गहरि = स्वर्गगृह ४।११
सच्चु = सत्य २०।८
सजस = स्वयश २८।१८
सण्णास = संन्यास ४।११
सण्हउ = चिकना, पतला १८।१०
सत्त = सात २७।१०
सत्तू = सत्तू ५।१४
सद्दोसहु = अपने दोषों के लिए २१।३
सम्माणिवि = सम्मानित कर ७।१
समग्गु = समग्र २८।९
समप्पिहु = समर्पित ३।६
समरंगणि = समरागंण ५।५
समीवि = समीप २।१०
सयडु = शकट (मन्त्री) ५।२. ५।१५
सयल = सकल, समस्त २।५: ४।६
सरिस = सदृश २७।१३
सलीलु = लीलाओं सहित १।१५
सवण = श्रमण ४।१२
सविज्ञा = अपनी विद्या से ४।२
ससाउ = आश्वासन ३।९
ससिमण्डल = शशिमण्डल १०। ७
ससिसम्मु = शशिशर्मा (सोमशर्मा पुरोहित) १।८
सहमाणहु = सम्मानपूर्वक १८।१
सहस = सहस्र २।२
सहुँ = साथ ३।१
साणहँ = कुत्तों के लिए १८। ११
साणु = श्वान, कुत्ता १०।१०
सामिय = स्वामी २।११: ३।८
सायउ = श्राविक २६।४
सावय = श्रावक ३।११
सासणस्स = शासन के लिए १।१४
सासणु = शासन ३।५
सासिय = शाषित ४।१२
साहाभंगु = शाखाभंग १०।५
सिट्ठा = कहे गये हैं २६।८
सिलायल = शिलातल १६।७
सिविणइँ = स्वप्न १०।४
सिस्सवग्गु = शिष्यवर्ग २१।१४
सिस्सु = शिष्य १३।१
सिसु = शिशु २।५. २।१२
सिहा= शिखा ११।१३
सीस = सिर २०।१०
सुमइ = सुमति १।२२
सुयकेवलि = श्रुतकेवली २।४: ११।१
सुयंगु = श्रुतांग २४।६
सुर = देव १।४
सुरकरि = ऐरावत हाथी १।१९: ५।३
सुसारो = सारभूत ४।३
सेयंवर = श्वेताम्बर २४।४
सेविव्वा = सेवन करना चाहिए १२।८
सेसम्मि = शेष में २७।१६

सोमसम्म = सोमशर्मा (पुरोहित) २।८
सोमसिरि = सोमश्री (परोहित पत्नी) १।९
सोरठि = सौराष्ट्र (देश) २३।१
सोहिवि = शोधन करके १।११
संगणियउ = विधिपूर्वक गिना ३।४
संघाधारु = संघ का आधार १४।४
संघाहिव = संघाधिप २८।१३
संजायउ = हुए ४।१०
संजायांगधर = अंगधारी हुए १।१
संताणकमु = सन्तान-परम्परा ६।१
संतासिउ = सन्त्रस्त किया २१।१४
संपइ = सम्प्रति, इस समय २।११
संवच्छर = सम्वत्सर (वर्ष) ६।१०
संवरसउ = समरूप बरसे २८।७
संवलु =कलेवा, भोजन ६।१२
संसिउ = शंसित, प्रशंसित २०।६

ह

हत्थु = हाथ ६।१०
हरणु = हरण करनेवाला ३।१४
हरिसिंघु =हरिसिंह (कवि के पिता) २८।१३
हल्लो = हल्ला, शोरगुल ६।६
हवेसइ = होगा २।४
हिययरु = हितकारी २४।२
हुयहु = हुआ, हो गया १३।६
हुवासणु = हुताशन ९।१
हूवउ = हुआ १।२१
होइव्वउ = होना चाहिए २४।१
होमि = हो जाता हूँ ८।४
होसइ = होगा २।६
होही = होगा १।१५

परिशिष्टः ५

टिप्पणियाँ

[ध्यातव्य— मूल शब्द के साथ कडवक एवं पंक्ति संख्या दी गयी है।]

१।१ पंचमुणीसर (पंचमुनीश्वर) - तिलोयपण्णत्ति (गाथा १४८२-८४) के अनुसार भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के बाद उनके तीर्थकाल में नन्दि, नन्दिमित्र,अपराजित, गोवर्धन एवं भद्रबाहु (प्रथम) ये पाँच महामुनीश्वर हुए, जो श्रुतकेवली (श्रुत–आगमशास्त्रों के अखण्ड रूप से ज्ञाता) माने गये हैं। इन्द्रनन्दि (१०-११वीं सदी ई.) कृत श्रुतावतार नामक ग्रन्थ तथा नन्दिसंघ की पट्टावली में इनका पृथक्-पृथक् काल इस प्रकार दिया गया है ः-

(१) नन्दि (-अपर नाम विष्णुनन्दि अथवा विष्णु)	-	१४ वर्ष
(२) नन्दिमित्र	-	१६ वर्ष
(३) अपराजित	-	२२ वर्ष
(४) गोवर्धन	-	१९ वर्ष
(५) भद्रबाहु (प्रथम)	-	२९ वर्ष
		कुल- १०० वर्ष

उक्त पंचमुनीश्वरों के पूर्व एवं वीर-निर्वाण (ई. पू. ५२७) के बाद तीन केवली हुए। (१) गौतम गणधर (२) सुधर्मा स्वामी (अपरनाम लोहाचार्य या लोहार्य) एवं (३) जम्बूस्वामी । इन तीनों का काल क्रमशः १२, १२ तथा ३८ (कुल जोड़ ६२) वर्ष माना गया है। तात्पर्य यह कि भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के बाद १६२ वर्षों में उक्त ३ केवली एवं ५ श्रुतकेवली हुए।

१।२ भद्दबाहु (भद्रबाहु प्रथम)- जैन-परम्परा के अन्तिम श्रुतकेवली। आचार्य हरिषेण (१०वीं सदी ईस्वी) कृत बृहत्कथाकोष के अनुसार भद्रबाहु पुण्ड्रवर्धन-देश के निवासी एक ब्राह्मण के पुत्र थे। बृहत्कथाकोष हरिषेणकृत] पुण्याश्रव कथाकोष प्रामचन्द्र मुमुक्षुकृत], कहकोसु [श्रीचन्द्रकृत] एवं आराधना कथाकोष [नेमिचन्द्र कृत] में एक कथा के रूप में तथा भद्रबाहु चरित [रत्नानन्दी कृत] में एक स्वतन्त्र चरित-काव्य के रूप में इनका जीवन-चरित वर्णित है।

उक्त भद्रबाहु का समय ३९०-३६१ ई.पू. माना गया है। मगधनरेश सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) ने इन्हीं से जैन दीक्षा धारण की थी (दे. श्रवणबेलगोल शिलालेख संख्या १७, १८, ४०, ५४, एवं १०८)। सुप्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने भी इस

उल्लेख का समर्थन किया है (दे. आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. ७५-७६)। विशेष के लिए इस ग्रन्थ की प्रस्तावना एवं परिशिष्ट देखिए)।

१।१ अंगधर (अंगधारी) - द्वादश अंगों को धारण करने वाला। जैन परम्परा में अंग (-आगम) साहित्य को महावीर की वाणी माना गया है। वह बारह प्रकार का है - (१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति-अंग, (६) ज्ञातृकथांग, (७) उपासक दशांग, (८) अन्तःकृद्दशांग, (९) अनुत्तरौपपातिकदशांग, (१०) प्रश्नव्याकरणांग, (११) विपाकसूत्रांग एवं (१२) दृष्टिवादांग। ये सभी अंग-ग्रन्थ अर्धमागधी-प्राकृत-भाषा-निबद्ध हैं। श्वेताम्बर जैन वर्तमान में उपलब्ध प्रथम ११ अंगों को प्रामाणिक एवं अन्तिम अंग को लुप्त मानते हैं। जबकि दिगम्बर जैन, केवल अन्तिम अंग को प्रामाणिक एवं प्रथम ११ अंगों को लुप्त मानते हैं।

उक्त साहित्य द्वादशांग-वाणी के नामसे भी प्रसिद्ध है। इसमें तीर्थंकरों की वाणी का संकलन रहता है। यह वाणी जिन्हें आद्योपान्त यथार्थरूप में कण्ठस्थ रहती है तथा जिन्हें उनका निर्दोष अर्थ भी ;स्पष्ट रहता है उन्हें अंगधर या अंगधारी कहा जाता है। जैन-परम्परा में भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद की अंगधारियों की परम्परा इस प्रकार है :-

आचार्य नाम	कितने अंगों के धारी		काल	साक्ष्य
(१) विशाखाचार्य	११ अंगधारी एवं १० पूर्वधारी	ई. पू.	३६५- ३५५	श्रुतावतार (इन्द्रनन्दिकृत)
(२) प्रोष्ठिल -	"	ई. पू.	३५५-३३६	"
(३) क्षत्रिय-	"	"	३३६-३१९	
(४) जयसेन (प्रथम)	"	"	३१९- २९८	"
(५) नागसेन -	"	"	२९८-२८०	"
(६) सिद्धार्थ -	"	"	२८०-२६३	"
(७) धृतिसेण -	"	"	२६३- २४५	"
(८) विजयसेन -	"	"	२४५-२३२	"
(९) बुद्धिलिंग (या बुद्धिल)-	११ अंगधारी एवं १० पूर्वधारी	ई. पू.	२३२-२१२	श्रुतावतार (इन्द्रनन्दिकृत)
(१०) गंगदेव या देव -	"	"	२१२- १९८	"
(११) धर्मसेन -	"	"	१९८-१८२	"
(१२) नक्षत्र -	केवल ११ अंगधारी	"	१८२- १६४	श्रुतावतार

(१३) जयपाल (अपरनाम यशपाल अथवा जसफल)	"	"	१६४-१४४	"
(१४) पाण्डव -	"	"	१४४-१०५	"
(१५) ध्रुवसेन (या द्रुमसेन)-	"	"	१०५- ९१	"
(१६) कंसाचार्य -	"	"	९१-५९	"
(१७) सुभद्र	१० अंगधारी	ई. पू.	५९-५३	श्रुतावतार
(१८) यशोभद्र (प्रथम) अथवा भद्र या अभय	"	"	५३-३५	"
(१९) भद्रबाहु (द्वितीय) अथवा यशोबाहु	८अंगधारी	"	३५-१२	"
(२०) लोहाचार्य या लोहार्य	"	"	१२ से सन् ३८ ई.	"

१।१ अट्ठंगणिमित्त (अष्टांग निमित्त)- आठ महानिमित्तों में कुशलता प्राप्त करना अष्टांग महानिमित्तज्ञता कहलाती है। तिलोयपण्णत्ति के अनुसार अष्टांग निमित्तज्ञान इस प्रकार हैंः

(१) अन्तरिक्ष निमित्तज्ञान - ग्रह-उपग्रह देखकर भावी सुख-दुख का ज्ञान।

(२) भौम - पृथिवी के घन, सुषिर आदि गुणों को विचारकर ताँबा, लोहा आदि धातुओं की हानि-वृद्धि तथा दिशा-विदिशा को देखकर और अन्तराल में स्थित चतुरंग-बल को देखकर जय-पराजय को जानना।

(३) अंग- मनुष्यों एवं तिर्यंचों के अंगोपांगों के दर्शन एवं स्पर्श से वात, पित्त एवं कफ रूप तीन प्रकृतियों एवं सप्त धातुओं को देखकर तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख या मरणादि को जानना।

(४) स्वर- मनुष्यों एवं तिर्यंचों के विचित्र शब्दों को सुनकर त्रिकाल में होने वाले दुखों-सुखों को जानना।

(५) व्यंजन- सिर,मुख एवं कन्धे आदि के तिल एवं मस्से आदि को देखकर तीनों कालों के सुखों-दुखों को जानना।

(६) लक्षण- हाथ-पैर के नीचे की रेखाएँ तथा तिल आदि देखकर तीनों काल सम्बन्धी सुखों-दुखों को जानना।

(७) चिह्न या छिन्न- देव, दानव, राक्षस, मनुष्य और तिर्यंचों के द्वारा छेदे गये शस्त्र, वस्त्र तथा प्रासाद, नगर और देशादि चिह्नों को देखकर तीनों काल सम्बन्धी शुभ, अशुभ, मरण तथा सुख-दुख आदि को जानना।

(८) स्वप्न - वात-पित्तादि दोषों से रहित व्यक्ति सुप्तावस्था में रात्रि के अन्तिम प्रहर में अपने मुख में प्रविष्ट चन्द्र, सूर्य के दर्शन रूप शुभ स्वप्न एवं घृत, तैल की मालिश, ऊँट, गधे आदि की सवारी या परदेश-गमन रूप अशुभ स्वप्न देखकर तीनों कालों के दुख-सुख को बतलाने का ज्ञान।

२।१२ **दियवर (द्विजवर)** - श्रेष्ठ ब्राह्मण। जैन-परम्परानुसार सात्त्विक, अणुव्रतधारी तथा विवेकशील द्विज या ब्राह्मण को श्रावक माना गया है। जन्मसिद्ध किन्तु अविवेकी तथा अनाचारी ब्राह्मण उस श्रेणी में नहीं आ सकता।

५।१३ **पाडलिपुर,पाडलिउत्ति (पाटलिपुर, पाटलिपुत्र)**- आधुनिक पटना (बिहार)। ई. पू.४६७ के आसपास राजगृही के बाद पाटलिपुर को ही मगध की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसके अपरनामों में कुसुमपुर, पुष्पपुर एवं पुष्पभद्रपुर भी प्रसिद्ध हैं। जैन - इतिहासानुसार इसकी स्थापना कुणिक के पुत्र उदायि ने ई. पू. ४७० के आसपास की थी। अर्धमागधी आगम-साहित्य के अनुसार ई. पू. की चतुर्थ शती के सम्भवतः तृतीय चरण में यहाँ प्रथम संगीति का आयोजन किया गया था, जो पाटलिपुत्र-वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। । "विविधतीर्थकल्प" के अनुसार उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र की रचना यहीं पर की थी तथा स्वामी समन्तभद्र एवं महाकवि हरिचन्द यहाँ पर आयोजित शास्त्रकार-परीक्षा में सफल घोषित किये गये थे।

आचार्य जिनप्रभ सूरि के अनुसार पाटलिपुत्र में १८ विद्याओं, स्मृतियों, पुराणों तथा ७२ कलाओं की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध था। भरत, वात्स्यायन एवं चाणक्य के लक्षणग्रन्थों, रत्नत्रय,यन्त्र, तन्त्र एवं मन्त्र-विद्याओं, रसवाद, धातुवाद, निधिवाद, (सिक्का ढालने सम्बन्धी सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक ज्ञान), अंजनगुटिका, पाद-प्रलेप, रत्न-परीक्षा, वास्तु-विद्या, पुरुषलिंगी एवं स्त्रीलिंगी गज, अश्व एवं वृषभादि के लक्षण सम्बन्धी विद्याओं, इन्द्रजाल सम्बन्धी ग्रन्थों एवं काव्यों में वहाँ के निवासी अत्यन्त निपुण थे। यही कारण है कि आचार्य आर्यरक्षित चतुर्दश विद्याओं का अध्ययन करने हेतु दशपुर से पाटलिपुत्र पधारे थे (दे. विविधतीर्थकल्प पृ.७०)।

५।३; ९।८ **पच्चंतवासिअरि (प्रत्यन्तवासी अरि)** -- सीमान्तवर्ती शत्रु। यहाँ पर कवि ने सीमान्तवर्ती शत्रु का नामोल्लेखन नहीं किया है। जैन-साहित्य के उल्लेखों के अनुसार चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त (मौर्य) राजा नन्द के प्रत्यन्तवासी शत्रु की सहायता से युद्ध में राजा नन्द को पराजित कर देते हैं और चन्द्रगुप्त मगध का राजा घोषित कर दिया जाता है। यह शत्रु राजा पर्वतक रहा होगा जो पश्चिमोत्तर सीमान्त का वीर लड़ाकू राजा था और जिसने यूनानी सम्राट् सिकन्दर के हृदय में हड़कम्प मचा दी थी।

प्राचीन लेखकों ने चन्द्रगुप्त के लिए पर्वतक की सहायता का स्पष्ट उल्लेख न कर यह बताया है कि चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मगध से पंजाब चले आये और वहाँ सेना को सुसंगठित कर उसके द्वारा यूनानियों को पराजित किया तथा उसी सेना को और अधिक सुदृढ़ बनाकर वह मगध आया एवं राजा नन्द को हराकर वहाँ का राजा बन बैठा।

मुद्राराक्षस नाटक के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) की सेना में शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक और बाह्लीक जाति के लोग सम्मिलित थे। इससे विदित होता है कि चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त ने यूनानियों की रणनीति के साथ-साथ सम्भवतः उसके सैनिकों तथा सीमान्तवर्ती राजा पुरु या पर्वतक की सहायता से राजा नन्द को पराजित किया था। (विशेष के लिए प्रस्तावना देखिए)

५।४ **णंदि (नन्द)** - पाटलिपुर का राजा नन्द। नन्दवंश के विषय में वैदिक, बौद्ध एवं जैन उल्लेख परस्पर में इतने विरुद्ध हैं कि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि नन्द राजाओं ने कितने वर्षों तक राज्य किया था। विंसेंट स्मिथ ने इस वंश का राज्यकाल ई. पू.४१३ से ई. पू. ३२५ तक माना है।

वैदिक साहित्य एवं पुराणों के अनुसार शिशुनागवंश में १० राजा हुए, जो क्षत्रिय थे, उनमें महानन्दि अन्तिम राजा था। उसकी शूद्रा नाम की पत्नी से महापद्म नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने मगध पर अधिकार कर नन्दवंश की स्थापना की। यह महापद्मनन्द पराक्रमी होने के साथ निर्दयी एवं लोभी था। मत्स्यपुराणानुसार उसने क्षत्रिय वंश का संहार कर 'एकच्छत्र' और एकराट् अर्थात् चक्रवर्ती राजा का पद प्राप्त किया। यथा--

महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः।

उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः॥

एकराट् स महापद्मो एकच्छत्रो भविष्यति। २७२/१७-१८॥

आर्यजाति के इतिहास में यह प्रथम शूद्र राजा था। अपने दुष्ट गुणों के कारण वह प्रजा में लोकप्रिय न हो सका।

उक्त नन्दवंश में नौ राजा हुए, जो नवनन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। कुछ इतिहासकार नव का अर्थ ९ (नौ) करते हैं, किन्तु डॉ. के. पी. जायसवाल के अनुसार नव का अर्थ नवीन है। उनके मतानुसार नन्दवंश में ९ राजा नहीं हुए, प्रत्युत महापद्मनन्द नामक शूद्र राजा नवीन नन्दवंश का था जो पूर्व के नन्दों - नन्दिवर्धन और महानन्दि से भिन्न था। नये नन्द राजा ने पूर्व-नन्दों को मारकर उनसे मगध का राज्य छीन लिया था। और नये नन्दवंश की स्थापना की थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय महापद्मनन्द का पुत्र धननन्द मगध का सम्राट् था जिसे मारकर चन्द्रगुप्त मौर्य ने ई. पू. ३७२ के आस-पास उसका राज्य सिंहासन प्राप्त किया था। (विशेष के लिए प्रस्तावना देखिए)

५।४ **सयडु मंती (शकट मन्त्री)** - पाटलिपुर के राजा नन्द का मन्त्री, जो भारतीय इतिहास में शकटाल के नाम से प्रसिद्ध है। जैन-स्रोतों के अनुसार जैनाचार्य स्थूलिभद्र इसी शकटाल का पुत्र था। गुलजारबाग, पटना में इनका स्मृतिचिह्न अभी भी उपलब्ध है। बृहत्कथाकोष, पुण्याश्रवकथाकोष तथा आराधना कथाकोष में शकटाल की विस्तृत जीवन-कथा वर्णित है। आराधनाकथाकोष के अनुसार शकटाल के साथ वररुचि भी राजा नन्द का मन्त्री था।

७।६ **भोयणसाला (भोजनशाला)** - विशाल राज्यों में महत्त्वपूर्ण अतिथियों के लिए राज्य की ओर से सर्वसुविधासम्पन्न भोजनागार की व्यवस्था रहती थी। इस प्रकार के भोजनागार की योजना मगध के राजाओं की अपनी विशेषता थी। अतिथियों के व्यक्तित्व के अनुसार वहाँ स्वर्णासन, रजतासन, कंस्यासन, काष्ठासन आदि पर बैठाकर उन्हें भोजन कराया जाता था। सम्राट् अशोक के प्रथम शिलालेख में भी राजकीय भोजनागार की चर्चा आयी है। सुविधाओं की दृष्टि से इस भोजनागार की तुलना वर्तमान के 'अशोक होटल' ताज होटल, Five or three Stars Hotels से की जा सकती है।

८।२ **चाणक्क- (चाणक्य)** - प्राचीन भारतीय राजनीति एवं अर्थनीति के निर्धारण में चाणक्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिक, बौद्ध एवं जैन-साहित्य में उसे दृढ़निश्चयी, दृढ़प्रतिज्ञ एवं हठी ब्राह्मण के रूप में चित्रित किया गया है। उसके - जीवन - चरित के विषय में वैदिक-साहित्य में तो अन्तर मिलता ही है, जैन-साहित्य में भी विविध कथाएँ मिलती हैं। इनकी चर्चा प्रस्तुत पुस्तिका की भूमिका में की जा चुकी है। विशेषता यही है कि जैन-साहित्यकारों ने चाणक्य के उत्तरार्ध- जीवन की भी चर्चा की है, जिसे जैनेतर-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण पूरक-सन्दर्भ माना जा सकता है।

चाणक्य का अपर नाम कौटिल्य भी माना जाता है। उसने अपने शिष्य एवं मगध सम्राट् चन्द्रगुप्त (प्रथम) के लिए 'अर्थशास्त्र' की रचना की थी, जैसा कि उल्लेख मिलता है ः-

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥

चाणक्य की तुलना यूनानी विचारक अरस्तू से की जाती है। दोनों समकालीन थे। उनमें से एक सिकन्दर महान् का गुरु था, तो दूसरा चन्द्रगुप्त महान् का। [चाणक्य सम्बन्धी जैन सन्दर्भों के लिए इसी ग्रन्थ की प्रस्तावना एवं परिशिष्टें देखिए।]

१।७　**चंदगुत्ति (चन्द्रगुप्त)** - मौर्यवंश का संस्थापक प्रथम पराक्रमी वीर सम्राट्। भारतीय इतिहास का सम्भवतः यह प्रथम उदाहरण था कि अपने बल- बूते एवं पौरुष पर एक साधारण स्थिति का युवक भी मगध जैसे विश्वप्रसिद्ध साम्राज्य का अधिपति बन गया। मगध की बागडोर हाथ में आते ही उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग उठीं। यूनानी लेखक प्लूटार्क तथा जस्टिन के अनुसार चन्द्रगुप्त सम्पूर्ण भारत का सम्राट् था। उसने यूनानी शासक सिल्यूकस को हराकर उससे ऐरिया (हेरात्त), एराकोसिया (कान्धार), परोपनिसीद (काबुलघाटी) तथा गोद्रोसिया (बलूचिस्तान) अपने अधिकार में ले लिए थे। उसने प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से १८ व्यक्तियों की एक मन्त्रि-परिषद् तथा २६ विभागाध्यक्षों की नियुक्ति की थी। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से ही उसने अपना साम्राज्य निम्न पाँच भागों विभक्त किया थाः-

१. उत्तरापथ - (राजधानी - तक्षशिला),
२. दक्षिणापथ - (राजधानी - सुवर्णगिरि),
३. प्राच्य - (राजधानी - पाटलिपुत्र),
४. अवन्तिरथ - (राजधानी - उज्जयिनी) एवं
५. कलिंग - (राजधानी - तोषलि)।

जैन इतिहास एवं शिलालेखों के अनुसार मगध की राजगद्दी प्राप्त करने के कुछ ही वर्षों बाद चन्द्रगुप्त ने आचार्य भद्रबाहु से जैन-दीक्षा ग्रहण कर ली तथा उनके साथ दक्षिणाटवी के कटवप्र (वर्तमान श्रवणबेलगोला, कर्नाटक) में जाकर घोर तपस्या की। देशी एवं विदेशी अनेक प्राच्य विद्या-विदों ने इन उल्लेखों को प्रामाणिक माना है। [चन्द्रगुप्त मौर्य सम्बन्धी जैन-मान्यताओं की विशेष जानकारी हेतु इस ग्रन्थ की प्रस्तावना एवं परिशिष्टें देखिए]

१।११　**बिन्दुसार** - चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र, जो चन्द्रगुप्त के जैन-दीक्षा ग्रहण कर लेने के बाद मगध की राजगद्दी पर बैठा। १६ वीं सदी के तिब्बती इतिहासकार

आचार्य तारानाथ के अनुसार बिन्दुसार ने चाणक्य की सहायता से १६ राज्यों पर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य की सीमा पूर्व से पश्चिमी समुद्र तक विस्तृत कर ली थी। किन्तु जैन इतिहास अथवा भारतीय राजनैतिक इतिहास में ऐसे उल्लेख नहीं मिलते कि बिन्दुसार के राज्य-विस्तार में चाणक्य ने कोई सहायता की हो।

बिन्दुसार का दूसरा नाम अमित्रघात भी था। विभिन्न गवेषणाओं के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि बिन्दुसार की अनेक यवन-राजाओं से मित्रता थी। उसकी राज्य-सभा में पश्चिमी एशिया के राजा ऐंटियोकस ने मेगास्थनीज के स्थान पर डेईमेकस नामक राजदूत भेजा था। इसी प्रकार मिश्र (Egypt) के राजा टॉलिमी ने भी डायोनीसिस को अपने राजदूत के रूप में उसके यहाँ भेजा था।

बिन्दुसार ने लगभग २५ वर्षों तक राज्य किया और उसके बाद उसका पुत्र अशोक राजगद्दी पर बैठा।

१।१२. **असोउ (-अशोक)** - चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) का पौत्र एवं बिन्दुसार का पुत्र । विश्व के इतिहास में सम्राट् अशोक को जो प्रतिष्ठा मिली वह अन्य किसी सम्राट् को नही। वह जितना वीर, पराक्रमी एवं लड़ाकू था, उतना ही राजनीति में दक्ष भी। अपने पुरुषार्थ-पराक्रम से वह एक विशाल साम्राज्य का अधिपति बना, किन्तु इससे भी बड़ी उसकी दूसरी विशेषता यह थी कि समय आने पर उसने अपने संहारक-युद्ध को भी धर्मयुद्ध में बदल दिया। इस निर्णय में उसे जरा-सी भी देर नहीं लगी। आगे चलकर उसका सिद्धान्त ही बन गया कि सच्चा पराक्रमी वीर वह है, जो प्रजाओं के शरीर पर नहीं, हृदय पर शासन करता है। इस सिद्धान्त को उसने यथार्थ भी कर दिखाया।

विश्व-बन्धुत्व के संयोजन सम्राट् अशोक ने अपने शान्तिदूत एवं धर्मोपदेशक उन ५ यवनराज्यों में भेजे थे, जहाँ ऐंटियोकस (सीरिया), टॉलिमी (मिश्र), ऐंटिगोनस (मेसिडोनिया), मेगस (सिरीनी) एवं एलैग्जेंडर (एपिरस) नामक राजा राज्य करते थे। इसी प्रकार एशिया, आफ्रिका एवं यूरोपीय महाद्वीपों से भी उसने घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। अपने साम्राज्य के सीमान्तवर्ती प्रदेशों में बसने वाले यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितृनिक, भोज, आन्ध्र एवं पुलिन्द आदि जातियों एवं केरलपुत्र, सत्यपुत्र,चोल, पाण्ड्य और सिंहल आदि स्वाधीन देशों के साथ भी उसने अपने सहज मैत्री-सम्बन्ध जोड़े थे।

अशोक ने अपने शिलालेखों एवं स्तम्भलेखों में अपने को 'देवानांप्रिय' एवं 'प्रियदर्शी' जैसी सुन्दर उपाधियों से विभूषित किया है। श्रमण संस्कृति एवं धर्म के प्रचार में उसका योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। इतिहासकारों की कालगणना के अनुसार उसका समय ई. पू. २७२ से २३२ तक का माना गया है। जैन-साहित्य में अशोक के विषय में अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है।

९।१२. **णउल** (—**नकुल**)— सम्राट् अशोक का पुत्र। बौद्ध-साहित्य में यह कुणाल के नाम से प्रसिद्ध है। नकुल अन्धा कर दिया गया था। जैन मान्यतानुसार नकुल की इच्छा से अशोक ने उसके पुत्र सम्प्रति (चन्द्रगुप्त द्वितीय) को मगध का राजा बनाया था। इसका समय पू. ई. ३५ के बाद माना गया है।

१०।१. **चंदगुत्ति** (—**चन्द्रगुप्त**)— मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय। महाकवि रइधू ने मौर्यवंश की कुल-परम्परा प्रस्तुत की है, जो इस प्रकार हैः—

१. मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त (प्रथम)

↓

२. बिन्दुसार

↓

३. अशोक

↓

४. नकुल

↓

५. चन्द्रगुप्त (द्वितीय) - कवि रामचन्द्र मुमुक्षु के अनुसार इसने राजगद्दी पर बैठने के बाद १६ स्वप्न देखे थे। इसका समय जैन कालगणना के अनुसार ई. पू. ३५ वर्ष सिद्ध होता है। इसके स्वप्नों के फल का कथन भद्रबाहु द्वितीय ने किया होगा, क्योंकि उनका समय भी ई. पू. ३५ ही है। ये भद्रबाहु श्रुतकेवली नही, श्रुतावतार के अनुसार अष्टांगधारी अवश्य थे।

श्री रामचन्द्र मुमुक्षु (१२वीं सदी के आसपास) कृत 'पुण्याश्रवकथाकोष' के अनुसार अशोक के पौत्र (कणाल-पुत्र) का नाम सम्प्रति -चन्द्रगुप्त था। इस कोषग्रन्थ के अनुसार रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसके द्वारा देखे गये १६ स्वप्नों का फल-कथन आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) ने किया था। परवर्ती कुछ लेखकों के साथ कवि रइधू ने भी इस परम्परा का अनुकरण किया है, जो भ्रमात्मक है। क्योंकि सम्प्रति-चन्द्रगुप्त एवं भद्रबाहु (प्रथम) में लगभग ३३० वर्षों का अन्तर है। उक्त स्वप्न-परम्परा का कथन सर्वप्रथम रामचन्द्र मुमुक्षु ने किया है, इससे पूर्व के साहित्य में वह परम्परा नहीं मिलती।

१३।७. दोदहवरिसहुकालु (--द्वादशवर्षीय दुष्काल) - जैन-स्रोतों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) के समय में मगध में तथा कुछ ग्रन्थकारों के अनुसार मालवा एवं सिन्ध में १२ वर्षों का भयानक अकाल पड़ा था। इस कारण आचार्य भद्रबाहु के नेतृत्व में १२००० श्रमण-साधु दक्षिण भारत की ओर चले गये थे। स्थूलिभद्र, रामिल्ल एवं स्थूलाचार्य पाटलिपुर में ही रह गये थे। कालदोष से उसी समय जैन-संघ विभक्त हो गया। जैन सन्दर्भों के अनुसार यह दुष्काल सम्भवतः ई.पू. ३६३ से ई.पू.३५१ के मध्य पड़ा होगा।

१३।९, दक्खिण-दिसि (-दक्षिण-दिशा) -- दक्षिण भारत, जिसमें कर्नाटक, पाण्ड्य, चेर एवं चोल देश प्रमुख माने जाते थे।

१३।१५, थूलभद्द, रामिल्ल एवं थूलायरिय (--स्थूलिभद्र, रामिल्ल एवं स्थूलाचार्य)-- आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) की परम्परा के पाटलिपुत्र के प्रधान जैनाचार्य। द्वादशवर्षीय अकाल के समय इनके निवासस्थल के विषय में प्राचीन लेखकों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किये हैं। आचार्य हरिषेण (१०वी सदी) के अनुसार वे सिन्धदेश चले गये, जब कि रामचन्द्र मुमुक्षु एवं कवि रइधू के अनुसार वे पाटलिपुत्र में रहते रहे और भट्टारक रत्ननन्दि के अनुसार वे उज्जयिनी में रहे। किन्तु अधिकांश सन्दर्भों के आधार पर उक्त तीनों आचार्यों का पाटलिपुत्र में रहना अधिक तर्कसंगत लगता है। अर्धमागधी आगम-साहित्य के अनुसार स्थूलिभद्र उस समय पाटलिपुत्र में थे, अर्धमागधी आगम -साहित्य के आधार पर ये स्थूलिभद्र राजा नन्द के मन्त्री-शकट या शकटाल के पुत्र थे।

१३।१२ अडवी (-अटवी) -- भयानक जंगल। कोषकारों के अनुसार अटवी उस वन का नाम है, जहाँ सघन वृक्षों, झाड़ियों एवं विषम वन्य-प्राणियों के कारण मुनष्यों का प्रवेश अत्यन्त कठिन होता है।

१४।१२. कंतारभिक्ख (कान्तारभिक्षा) -- आचार्य भद्रबाहु ने जब अपने परम-शिष्यद्य मुनि चन्द्रगुप्त को निर्जल उपवासों की दीर्घ श्रृंखला में जकड़ा हुआ देखा तो उसे कान्तार-भिक्षा अथवा कान्तार-चर्या की आज्ञा प्रदान की। मेरी दृष्टि से आचार्य भद्रबाहु के इस प्रकार के आदेश में दो दृष्टिकोण थे। प्रथम तो यह कि उससे चन्द्रगुप्त के आचरण की परीक्षा हो जाती कि भूख-प्यास के दिनों में अपनी इन्द्रियों एवं मन पर वह पूर्ण विजय प्राप्त कर सका था या नहीं? अथवा, उसके शिथिलाचारी होने की कोई सम्भावना तो नहीं है? दूसरा यह, कि यदि उसने यथार्थ तपस्या की है, तो उसके प्रभाव

से उसे घने जगंल में भी निर्दोष आहार मिल सकता है अथवा नहीं। कान्तार-भिक्षा के विषय में मुझे अन्यत्र कोई भी सन्दर्भ सामग्री देखने को नहीं मिल सकी।

१६।१०. **चोलदेसि (चोलदेश)**— दक्षिण भारत का एक प्रमुख-प्राचीन स्वाधीन देश। इतिहासकारों ने वर्तमान कर्नाटक के दक्षिण-पूर्वी भाग अर्थात् मद्रास और उसका उत्तरवर्ती कुछ अंश तथा प्राचीन मैसूर रियासत को मिलाकर उसे प्राचीन चोलदेश माना है।

१९।१ **वसहिं (वसतिका)** - ध्यान एवं अध्ययन की सिद्धि के लिए एकान्त गुफा अथवा शून्य स्थान। (विशेष के लिए दे. भगवती आराधना)।

१९।२ **दारुपत्ति**— काष्ठपात्र अर्थात् लकड़ी के बने हुए विशेष बर्तन।

१९।२ **अंतराय**— सत्कार्यों में विघ्न आ जाने को अन्तराय कहते हैं। वह पाँच प्रकार का है - दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय एवं वीर्यान्तराय।

१९।५ **णिसहि (निषीधिका)**— अर्हदादिकों एवं मुनिराजों का समाधिकस्थल। भगवती-आराधना में बताया गया है कि निषीधिका को सर्वथा एकान्त स्थान में होना चाहिए । उसे निर्जन्तुक, समतल एवं प्रकाशपूर्ण होना चाहिए, उसे गीला नहीं होना चाहिए। उसे क्षपक की वसतिका से नैऋत्य-दिशा में दक्षिण दिशा में अथवा पश्चिम - दिशा में होना चाहिए। इस प्रकार की निषीधिका प्रशस्त मानी गयी है।

१९।१०. **पारणा** - इन्द्रियों को वश में रखने के लिए दिन में एक बार खड़े होकर यथालब्ध गृद्धिरहित एवं रस-निरक्षेप तथा पुष्टिहीन निर्दोष-आहार लेने को पारणा कहा जाता है।

२०।१. **खुल्ल (--क्षुल्लक)** – आचार में छोटा साधु। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि श्रावक की ११ भूमिकाओं (प्रतिमाओं) में सर्वोत्कृष्ट भूमिका का नाम क्षुल्लक है। वह एक श्वेत कौपीन एवं एक चादर मात्र धारण करता है। अमरकोषकार के अनुसार क्षुल्लक के अपरनाम इस प्रकार हैं - विवर्ण, पामर, नीच, प्राकृत, पृथग्जन, निहीन, अपसद, जाल्म और क्षुल्लक।

२०।१०. **आलोयण (आलोचना)** – गुरु के समक्ष निश्चल-भाव से अपने छोटे-बड़े सभी दोषों को स्पष्ट रूप से कह देना। आलोचना वीतराग के समक्ष ही की जाती है, सरागी के सम्मुख नहीं।

२१।८.**पाणिपत्ति (पाणिपात्र)**- हथेली पर रखकर आहार लेना।

२२।३. विंतरु (व्यन्तरदेव) - तत्त्वार्थसूत्र में व्यन्तर आठ प्रकार के बतलाये गये हैंध्द्य किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत एवं पिशाच।

२३।१. सोरठि (सौराष्ट्र, दक्षिण काठियावाड़) - प्राचीनकाल में जिसकी राजधानी गिरिनगर (गिरनार) थी। प्राचीन सौराष्ट्र को आजकल गुजरात का एक अंग बना दिया गया है।

सौराष्ट्र के जूनागढ़ नगर में मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त (प्रथम) ने अपने प्रान्तीय शासक वैश्य पुष्यगुप्त की देखरेख में आसपास के प्रदेश में सिंचाई करने हेतु एक पर्वतीय नदी को बाँधकर सुदर्शन नामक सुन्दर झील का निर्माण कराया था। आगे चलकर सम्राट् अशोक के एक प्रान्तीय यवन-शासक तुषास्फ ने उससे नहरें निकलवायी थीं। सन १५० ई. में ऊर्जयन्त पर्वत से निकलने वाली स्वर्णसिक्ता एवं पलाशिनी नामकी नदियों में भयानक बाढ़ आ जाने के कारण जब उस झील का बाँध टूट गया और प्रजाजनों में हाहाकार मच गया तब राजा रुद्रदामन् ने राज्यकोष की ओर से उसका जीर्णोद्धार कराया था, किन्तु स्कन्दगुप्त के शासनकाल में अतिवृष्टि के कारण वह बाँध पुनः टूट गया। अतः जनता का घोर कष्ट देखकर स्कन्दगुप्त ने ४५६ ईस्वी के आसपास उसका पुनर्निर्माण कराया था।

जैन-साहित्य में सौराष्ट्र का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जैनियों के २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ को गिरनार पर्वत पर निर्वाण-पद की प्राप्ति हुई थी। अनेक जैन कथानकों की घटनाओं का सम्बन्ध सौराष्ट्र से पाया जाता है।

२३।१ वलहीपुर (वलभीपुर) -- गुजरात का एक प्रसिद्ध नगर, जहाँ अर्धमागधी आगम-साहित्य के संकलन एवं सम्पादन हेतु ईस्वी की ५वीं सदी के आसपास देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में तृतीय एवं अन्तिम संगीति हुई थी।

२३।१०. करहाडपुर -- सम्भवतः वर्तमान महाराष्ट्र का करड नामक शहर।

२४।१ णिग्गंथ (निर्ग्रन्थ)-- कवि का अभिप्राय यहाँ यापनीय-संघ के साधुओं से है। सामान्यतया यह दिगम्बरत्व एवं श्वेताम्बरत्व का मिश्रित रूप है।

२४।३ वलियसंघ - यापनीय संघ। इसे मध्यममार्गीय माना जा सकता है। यह संघ यद्यपि नग्नता का पक्षपाती था किन्तु कुछ श्वेताम्बर जैनागमों को भी प्रामाणिक मानता था। (विशेष के लिए दे. भगवती -आराधना की अपराजित सूरिकृत सं. टी.)।

२४।६ पुप्फयंत-भुयवली (पुष्पदन्त-भूतबलि) -- आचार्य विशाखनन्दी की परम्परा के आचार्य धरसेन के साक्षात् शिष्य, जिन्होंने श्रुतांगों को लिखा।

२४।८ **सुयंगु (श्रुतांग)** – यह बारह प्रकार का है- (१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति, (६) ज्ञातृकथा, (७) उपासकदशांग, (८) अन्तःकृद्दशांग, (९) अनुत्तरौपपातिकदशांग, (१०) प्रश्नव्याकरणांग (११) विपाकसूत्रांग एवं (१२) दृष्टिवादांग।

२४।१० **सुयपंचमी (श्रुतपंचमी)** – श्रुतांगों के लेखन ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी की तिथि।

२४।१० **काल**– जैन मान्यतानुसार काल के दो भेद हैं–

(१) उत्सर्पिणी काल एवं (२) अवसर्पिणी काल। जिस काल में बल, आयु, अनुभव एवं उत्सेध का उत्सर्पण अर्थात् वृद्धि हो, वह उत्सर्पिणी काल एवं उनका ह्रास हो, वह अवसर्पिणीकाल कहलाता है। ये दोनों काल मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं। इन दोनों को मिला देने से २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम- प्रमाण एक कल्पकाल होता है।

अवसर्पिणी काल एवं उत्सर्पिणी काल ६-६ प्रकार के होते हैं। निम्न मानचित्र से उन्हें समझा जा सकता है: –

अवसर्पिणीकाल		गुण	उत्सर्पिणीकाल गुण
१. सुषमा-सुषमा	--	अत्यन्त सुख ही सुख	१. दुषमा - दुषमा -- घोर दुख ही दुख
२. सुषमा	--	सुख	२. दुषमा -- दुख
३. सुषमा-दुषमा	--	दुखों की अपेक्षा सुख अधिक	३. दुषमा-सुषमा – सुखों की अपेक्षा दुख अधिक
४. दुषमा-सुषमा	--	सुखों की अपेक्षा दुख अधिक	४. सुषमा-दुषमा -- दुखों की अपेक्षा सुख अधिक
५. दुषमा	--	दुख	५. सुषमा -- सुख
६. दुषमा-दुषमा	--	घोर दुख ही दुख	६. सुषमा-सुषमा-- अत्यन्त सुख ही सुख

उक्त नामों में 'सु' उपसर्ग सुख एवं 'दु' उपसर्ग दुःख के सूचक हैं।

२४।१० **पंचमकाल** – जिनसेनकृत महापुराण के अनुसार पंचमकाल अत्यन्त दुखदायी होता है। मिथ्यामतों का प्रचार, व्यन्तर देवों की उपासना, भ्रष्टाचारी मनुष्यों का बाहुल्य, विविध व्याधियाँ, रसविहीन औषधियाँ, असंतोष, पारस्परिक-कलह,

नास्तिकता का प्रचार आदि उसके प्रधान लक्षण बतलाये गये हैं। जैन मान्यतानुसार वर्तमान-युग पंचमकाल (अवसर्पिणी का दुषमाकाल) के अन्तिम चरण में चल रहा है।

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के ३ वर्ष ८ माह एवं १५ दिन के बाद उक्तकाल का प्रारम्भ हुआ। इसमें क्रमशः २१ कल्कि राजा होते हैं, जो प्रजाजनों को अनेक प्रकार के कष्ट देते रहते हैं। इस काल में प्रारम्भ में मनुष्यों की अधिक से अधिक आयु १२० वर्ष की होती है, जो बाद में क्रमशः घटती जाती है।

२५।२ **कक्की (कल्कि-राजा)**– महाकवि रइधू के अनुसार चतुर्मुख नामक इस कल्कि राजा ने प्रजाजनों एवं श्रमण-साधुओं पर घोर अत्याचार किया। उसके इस दुष्ट कार्य से क्रोधित होकर किसी व्यन्तरदेव ने उसे मार डाला। तब उसका पुत्र अजितंजय उसका उत्तराधिकारी बना।

तिलोयपण्णत्ति के अनुसार महावीर निर्वाण के १००० वर्षों के बाद पृथक् -पृथक् एक-एक कल्कि तथा ५०० वर्षों के बाद एक-एक उपकल्कि राजा होंगे, इस प्रकार २१ कल्कि और २१ उपकल्कि राजा होंगे, जो अपने दुष्ट कर्मों को कारण नरक में उत्पन्न होंगे। तत्पश्चात् ३ वर्ष ८माह एवं १५ दिन व्यतीत होने पर छठा दुषमा - दुषमा काल प्रारम्भ होगा।

राजनैतिक इतिहास में कल्कि नाम के किसी भी राजा का उल्लेख नही मिलता। इतिहासकारों की भी ऐसी मान्यता है कि भारतवर्ष में कल्कि नाम का कोई राजा नहीं हुआ। उनकी ऐसी धारणा है कि भारतवर्ष में गुप्त सम्राटों के बाद 'हूण' नामकी एक जंगली बर्बर जाति ने लगभग १०० वर्षों तक राज्य किया था। उसमें ४ राजा हुए और सभी अत्यन्त दुष्ट, नीच एवं प्रजाजनों पर अत्याचार करते रहे।

जैन-साहित्य में कल्कि नामक राजाओं के उल्लेख मिलते हैं और उनके विषय में बताया गया है कि सामान्य प्रजाजनों के साथ-साथ जैन-साधुओं पर भी वे अत्याचार करते थे। उनके भोजन पर भी उन्होंने 'कर' लगा दिया था। इस प्रकार का प्रचुर वर्णन गुप्तकालीन एवं परवर्त्ती जैन-साहित्य में उपलब्ध है।

भारतीय राजनैतिक इतिहास एवं जैन-साहित्य के कल्कि सम्बन्धी तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भले ही कल्कि नाम का राजा न हुआ हो, किन्तु उस काल में जो भी राजा हुए वे अत्यन्त दुष्ट थे। अतः प्रजा-विरोधी अपने अत्याचारी दुर्गुणों के कारण कल्कि (या कलंकी ?) नाम से प्रसिद्ध हो गये। कहते है कि इन्होंने लगातार १०० वर्षों तक राज्य किया था।

राजनैतिक इतिहास एवं जैन-साहित्य के कल्कि सम्बन्धी तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भले ही कल्कि नाम का राजा न हुआ हो, किन्तु उस काल में जो भी राजा हुए वे अत्यन्त दुष्ट थे। अतः प्रजा-विरोधी अपने अत्याचारी दुर्गुणों के कारण कल्कि (या कलंकी ?) नाम से प्रसिद्ध हो गये। कहते है कि इन्होंने लगातार १०० वर्षों तक राज्य किया था।

तिलोयपण्णत्ति (--त्रिलोकप्रज्ञप्ति ४-५वीं सदी ईस्वी) नामक ग्रन्थ के अनुसार वीर निर्वाण संवत् ९५८ (अर्थात् ४३१ ईस्वी) में गुप्त-साम्राज्य के बाद इन्द्र का पुत्र कल्कि उत्पन्न हुआ। उसका नाम चतुर्मुख था। उसकी आयु ७० वर्ष की थी। उसने ४२ वर्षों तक राज्य किया। उसे निरपति का पट्ट वीर निर्वाण संवत् ९५८ में बाँधा गया।

भारतीय इतिहास की दृष्टि से ४३२ ईस्वी में लड़ाकू हूणों ने गुप्त-साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। यद्यपि स्कन्दगुप्त ने उन्हें पराजित किया, फिर भी वे (हूण) अपनी शक्ति बढ़ाते रहे और ५०० ई. के आसपास उनके सरदार तोरमाण ने गुप्तों को हराकर पंजाब और मालवा पर अधिकार कर लिया। ५०७ ईस्वी में उसके पुत्र मिहिरकुल ने भानुगुप्त को पराजित कर गुप्तवंश को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर एक हिन्दू-सरदार -- विष्णुधर्म ने सैन्य-संगठन कर ५२८ ईस्वी में मिहिरकुल को परास्त कर राज्य से निकाल बाहर किया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषण के अनुसार विष्णुयशोधर्म कट्टर वैष्णव था। उसने वैदिक-धर्म का उपकार तो किया किन्तु जैन-साधुओं एवं जैन-मन्दिरों पर उसने बड़ा अत्याचार किया। अतः जैनियों में वह कल्कि के नाम से प्रसिद्ध हुआ जबकि हिन्दू-सम्प्रदाय का उसे अन्तिम अवतार माना गया।

उक्त सभी तथ्यों के आधार पर एक सामान्य तुलनात्मक मानचित्र निम्न प्रकार तैयार किया जा सकता है--

जैन स्रोतों के आधार पर			भारतीय राजनैतिक इतिहास के आधार पर					विशेष
कल्किराजा का नाम	पिता का नाम	काल	वंश	राजा का नाम	पिता का नाम	समकालीन हिन्दूराजा का नाम	काल	
चतुर्मुख	इन्द्र अथवा शिशुपाल	(क) तिलोयपण्णत्ति एव हरिवंशपुराण के अनुसार वीरनिर्वाण संवत् ९५८-१००० (४३१-४७३ ईस्वी) (ख) महापुराण एव त्रिलोकसार के अनुसार वीर निर्वाण संवत् १०३०- १०७० (५०३- ५४३ ईस्वी)	हूण	मिहिरकुल	तोरमाण	भानुगुप्त एव विष्णुधर्म (अपरनाम-विष्णुयशोधर्म)	५०७-५२८ ईस्वी	(१) प्रतीत होता है कि मिहिरकुल ही चतुर्मुख है तथा तोरमाण ही इन्द्र अथवा शिशुपाल। (२) जैन इतिहास की दोनों मान्यताओं (दे. क-ख) में विशेष अन्तर नहीं है। क्योंकि प्रथम मान्यता (क) में कल्कि का राज्यकाल मिलाकर वीर निर्वाण सवत् के बाद १००० वर्ष की गणना करके दिखाई गयी है अर्थात् १००० वर्ष बाद धर्म एवं संघ का लोप बतलाया गया है। दूसरी मान्यता (ख) मे वीर निर्वाण संवत् १००० में कल्कि का जन्म बतलाकर ४० वर्ष बाद उसे राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ बतलाया गया है। दोनों मान्यताओं में एक बात सामान्य है और वह यह कि उसका राज्यकाल लगभग ४० वर्ष का बतलाया गया है। इतिहास से तुलना करने पर दूसरी मान्यता तर्कसंगत प्रतीत होती है क्योंकि मिहिरकुल का समय सन् ५०७-५२८ ई. के आस-पास बतलाया गया है।

२८।१ **कसाय (कषाय)** -- जैनदर्शन के अनुसार कषाय वह है जो आत्मा को कलुषित करे। वे चार प्रकार की हैं - क्रोध, मान, माया एवं लोभ। इन कषायों की शक्ति बड़ी विचित्र मानी गयी है, कभी-कभी तीव्र कषाय के कारण आत्मा के प्रदेश शरीर से बाहर निकल अपने शत्रु का घात तक कर डालते हैं, इस क्रिया को *'कषाय-समुद्घात'* कहा गया है।

२८।११ **मुणि जसकित्ति (मुनि यशःकीर्ति)** -- कठोर साधक होने के कारण यशःकीर्ति को मुनि कहा गया है। वस्तुतः वे भट्टारक थे। कवि रइधू ने अपनी अनेक रचनाओं में इन्हें अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है। वे काष्ठासंघ, माथुरगच्छ की पुष्करगण शाखा के सर्वाधिक यशस्वी, श्रेष्ठ साहित्यकार, प्राचीन शीर्ण-जीर्ण ग्रन्थों के उद्धारक थे।

यशःकीर्ति के निम्न ग्रन्थ उपलब्ध हैं-- (१) पाण्डवपुराण (अपभ्रंश ३४ सन्धियाँ), (२) हरिवंशपुराण (अपभ्रंश १३ सन्धियाँ), (३) जिणरत्तिकहा एवं (४) रविवयकहा।

भट्टारक यशःकीर्ति ने स्वयम्भूकृत अरिट्ठणेमिचरिउ (अपभ्रंश) एवं विबुध-श्रीधरकृत भविष्यदत्तचरित (संस्कृत) का जीर्णोद्धार किया था। यदि उनका ध्यान इस ओर न जाता, तो साहित्य-जगत् से ये दोनों ग्रन्थ लुप्त हो जाते ।

ग्वालियर के एक मूर्तिलेख के अनुसार इनका कार्यकाल वि. सं. १४८६ से १५१० के मध्य सिद्ध होता है।

२८।११-१२ **खेमचंद, हरिषेण एवं पाल्ह बम्भ**-- ये तीनों भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य थे। रइधू के अन्य कई ग्रन्थों में इनके नामों के उल्लेख मिलते हैं। [विशेष के लिए दे. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ. ७७-७८]

२८।१३ **देवराय**-- महाकवि रइधू के पितामह। रइधू ने उन्हें संघपति कहा है। इससे विदित होता है कि वे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे।

२८।१३ **हरिसिंह**-- महाकवि रइधू के पिता। रइधू की प्रशस्तियों के अनुसार हरिसिंह भी संघपति थे।

२८।१५ **रइधू-बुह** --महाकवि रइधू --. प्रस्तुत रचना के लेखक । [विशेष के लिए दे. डॉ. राजाराम जैन द्वारा लिखित रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन तथा रइधू ग्रन्थावली प्र.भा.]

सन्दर्भ -साहित्य

प्रसंस्कृत-प्राकृत सम्बन्धी कुछ प्राचीन मूल साहित्य, जो भद्रबाहु चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त सम्बन्धी ऐतिहासिक अध्ययन एवं शोध-कार्य हेतु पठनीय हैं।]

अभिधान राजेन्द्र (संग्रह शब्द दृष्टव्य) रतलाम (१९१३-३४ ई.)
आचारांगचूर्णि (जिनदासगणिकृत) ऋषभदेव केशरीमल संस्था, रतलाम (१९४१ ई.)
आचारांगवृत्ति (शीलांकाचार्य) सूरत (१९३५ ई.)
आदिपुराण (जिनसेनाचार्यकृत) भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (१९६३ ई.)
आराधनाकथाकोष (भाग२-३) जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता
आवश्यकचूर्णि (जिनदासगणि) ऋषभदेव केशरीमल संस्था रतलाम (१९२८ ई.)
कल्पसूत्रवृत्ति (धर्मसागर) बम्बई (१९३९ ई.)
कहकोसु (मुनि श्रीचन्द्रकृत) प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद (१९६९ ई.)
कुमारपालप्रतिबोध (सोमप्रभसूरिकृत) गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बडौदा (१९२० ई.)
खारवेल शिलालेख (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी) (१९६२ ई.)
जयधवला (कषायपाहुड टीका भाग १, दिगम्बर जैन संघ, मथुरा) (१९४८ ई.)
जैन शिलालेख संग्रह भाग १-२ (माणिक. दिगम्बर जैन सीरीज, बम्बई)
तिलोयपण्णत्ति (यतिवृषभकृत) जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर (१९४३, ५२ ई.)
त्रिलोकसार (सि. च. नेमिचन्द्राचार्य) हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय बम्बई (१९१८ ई.)
दर्शनसार (देवसेनाचाय कृत) जैन ग्रन्थ रत्नाकर का र्यालय, बम्बई, (१९२० ई.)
दशवैकालिक चूर्णी (जिनदासगणि महत्तर) देवचन्द लालभाई झवेरी, सूरत (१९३३ ई.)
नन्दिसूत्र (प्रकाशक-मूथा, सतारा-) (१९४२ ई.)
नन्दिसंघ पट्टावली (जैन सिद्धान्त भास्कर प्रथमवर्ष में प्रकाशित)
निशीथचूर्णी (सन्मति ज्ञानपीठ आगरा-) (१९६० ई.)
निशीथसूत्र भाष्य (सन्मति ज्ञानपीठ आगरा-)
पट्टावलीसमुच्चय (वीरमगाँव, गुजरात-) (१९३३ ई.)
परिशिष्टपर्व (आचार्य हेमचन्द्रकृत) एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता (१९३२ ई.)
प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतुंगकृत) सिंधी जैन सीरीज, शान्तिनिकेतन, बंगाल (१९३३ ई.)
पुण्णासवकहा (महाकवि रइधू कृत, अप्रकाशित) रइधू-ग्रन्थावली के एक खण्ड के रूप मे शीघ्र ही प्रकाश्यमान
पुण्याश्रवकथाकोष (रामचन्द्रमुमुक्षु कृत) जीवराज जैन ग्रन्थमाला शोलापुर (१९६४ ई.)
बृहत्कथाकोष (हरिषेणकृत) सिंधी जैन सीरीज, बम्बई (१९४३ ई.)
भद्रबाहुचरित (रत्ननन्दिकृत). दि. जैन पुस्तकालय, सूरत (१९६६ ई.)
भावपाहुड - माणिकचन्द्र जैन सीरीज, बम्बई
भावसंग्रह - माणिकचन्द्र दि. जैन सीरीज, बम्बई (१९२१ ई.)
मूलाराधना, (शिवार्य) अनन्तकीर्त्ति ग्रन्थमाला, बम्बई (वि. स. १९८९)

विचारश्रेणी (मेरुतुंगाचार्य) जैनसाहित्य संशोधक (पत्रिका) पूना (मई १९२५ ई.)
श्रुतावतार (इन्द्रनन्दि) माणिकचन्द्र सीरीज बम्बई
षट्खंडागम - सेठ सितावराय लक्ष्मीचन्द्र जैन, विदिशा (मध्यप्रदेश)
हरिवंशपुराण (जिनसेनकृत) भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (१९६३ ई.)

भद्रबाहु-चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त सम्बन्धी कुछ आधुनिक ग्रन्थ

आक्सफोर्ड-हिस्ट्री आफ इण्डिया (स्मिथ) आक्सफोर्ड (१९१९ ई.)
इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन्स एण्ड इथिक्स (हेस्टिंग्स)
जिल्द १ एडिनवुर्ग (१९०८-२६ ई.)
एपिग्राफिका इण्डिका—जिल्द १२
कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया (रैप्सन) कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन (१९२१ ई.)
चन्द्रगुप्त मौर्य और उनका काल (डॉ. राधाकमल मुखर्जी)
जैन साहित्य का इतिहासः पूर्वपीठिका (पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री)
प्रकाशक—गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी (१९६२ ई.)
जैनिस्म इन नौर्थ इंडिया (सी. जे. शाह) लन्दन (१९३२ ई.)
नन्द एवं मौर्ययुगीन भारत (के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री) दिल्ली (१९६९ ई.)
भारत का प्राचीन इतिहास (पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ) हिन्दी ग्रन्थ
रत्नाकर कार्यालय बम्बई (१९२७ ई.)
भारतीय इतिहास की रूपरेखा (जयचन्द्र विद्यालंकर) भाग १-२
महाभिषेक स्मरणिका (सम्पा. लक्ष्मीचन्द्र जैन) भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (१९८१ ई.)
मौर्य साम्राज्य का इतिहास (के. पी. जायसवाल) पटना
मौर्य साम्राज्य का इतिहास (सत्यकेतु विद्यालंकार) मसूरी
वीर निर्वाण संवत् और जैन-काल-गणना (मुनि पुण्यविजयजी)
प्रकाशक - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (१९३० ई.)
सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट (हर्मन याकोबी) जिल्द २२, ४५.
एस. बी. ई. सीरीज आक्सफोर्ड (१८८४, १८८९ ई.)